हिन्दी

शीराज़ा

कविता विशेषांक

([illegible] हिन्दी कविता)

जे० एण्ड के० अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू
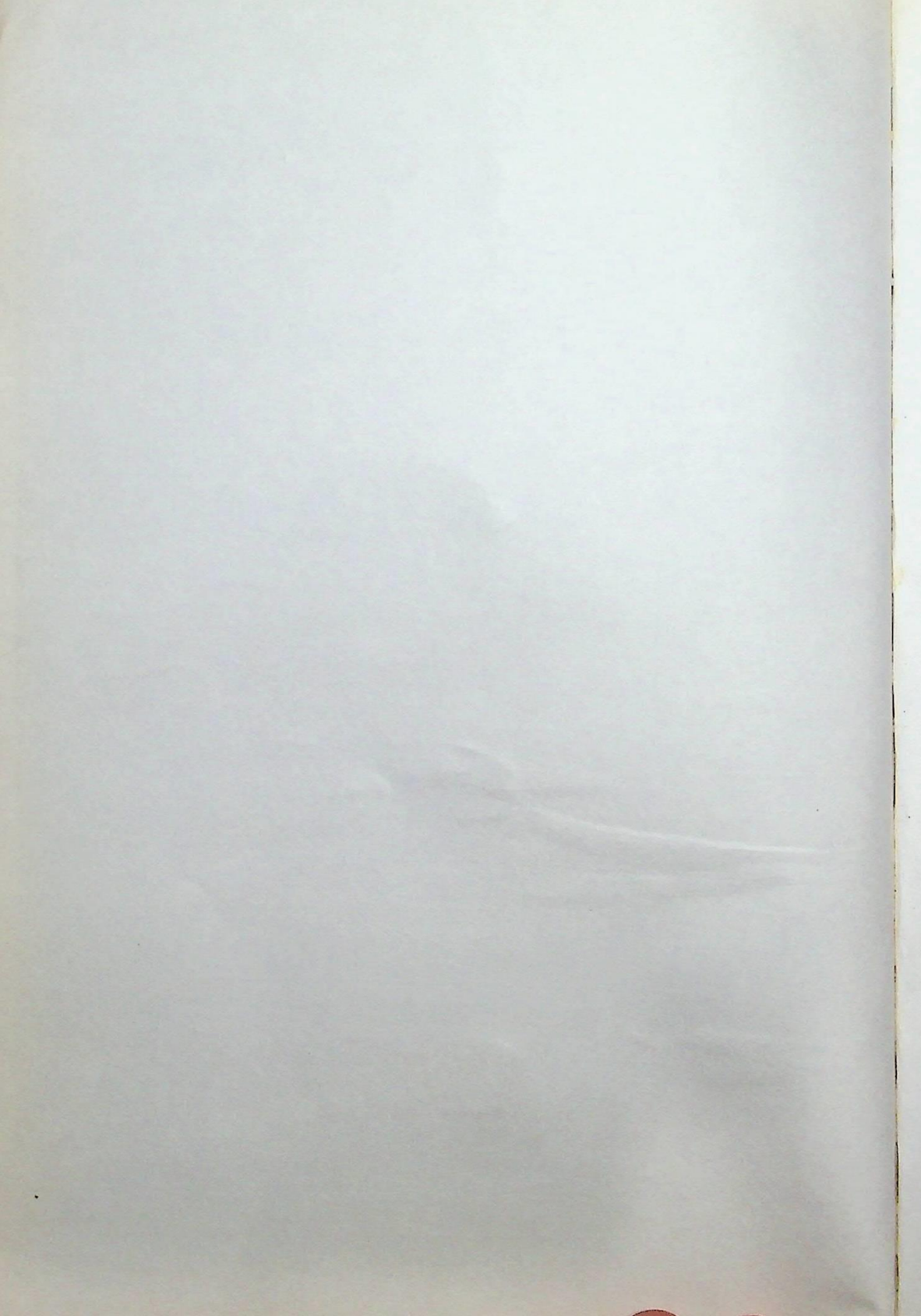
हिन्दी

शीराज़ा

कविता विशेषांक

(जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कविता)

प्रमुख संपादक

रमेश मेहता

संपादक

श्याम लाल रैणा

जे. एण्ड के. अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू

Sheeraza Regd. No : 28871/76 October, 2002 - January, 2003
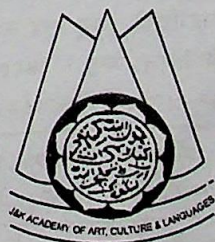
वर्षः 38 अंक : 4-5 पूर्णांक : 159-160

Editor-in-Chief
Ramesh Mehta

Editor
Shyam Lal Raina

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं इनसे अकैडमी या संपादन-मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है ।

प्रकाशक :- सचिव, जम्मू कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू - 180001

Publisher :- Secretary, J & K Academy of Art, Culture & Languages, Jammu-180001

संपर्क :- संपादक, शीराज़ा हिन्दी, जम्मू एण्ड कश्मीर अकैडमी ऑफ आर्ट, कल्चर एण्ड लैंग्वेजिज़, जम्मू - 180001
दूरभाष : 0191-2577643, 2579576

मुद्रक :- शिवा ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस, 794/95, गुरू रामदास नगर एक्स॰, गुरूद्वारा रोड़, लक्ष्मी नगर, दिल्ली - 92

नवंबर 2003 में प्रकाशित

मूल्य :- यह प्रति : 20 रूपये; वार्षिक : 50 रूपये

संपादकीय

जम्मू-कश्मीर को देव-भूमि कहा जाता है । यहां सदियों तक देव भाषा संस्कृत और वेद भाषा छंदस् का प्रयोग आम बोल-चाल में किया जाता रहा है । आज भी प्रदेश की सभी भाषाओं एवं उप-भाषाओं में वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत की शब्दावली तत्सम और तद्‌भव रूप में प्रचुर मात्रा में मिलती है । कश्मीर भूमि कभी विद्या का केन्द्र हुआ करती थी जहां का शारदा पीठ देश विदेश में ख्याति प्राप्त था । परन्तु धीरे-धीरे सभी काल के गर्त में चला गया ।

उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं का विकास प्राकृत और अपभ्रंशों से माना जाता है । यह एक सुखद आश्चर्य है कि सदियों पहले से ही जम्मू-कश्मीर में हिन्दी (ब्रज भाषा) में काव्य रचना होती रही है । गुरू नानक काल से लेकर भारतेन्दु युग तक जम्मू-कश्मीर में कवियों ने संस्कृत और प्रादेशिक भाषाओं के साथ-साथ ब्रज भाषा को अपनाया और काव्य-ग्रन्थों की रचना की । जिस समय प्रदेश में हिन्दी साहित्य का विकास हुआ वह राजनीतिक एवं सामाजिक उथल-पुथल का काल माना जाता है, हालांकि जम्मू और कश्मीर की राजनीतिक परिस्थितियां भिन्न रहीं । जम्मू में जहां हिन्दी कवियों को राजाश्रय प्राप्त था वहीं कश्मीर में परिस्थिति किंचित विपरीत थी यद्यपि कुछ अज्ञात कवि ब्रज भाषा में लिखा करते थे ।

प्रस्तुत विशेषांक में जम्मू-कश्मीर की उपलब्ध काव्य रचना को हमने तीन काल-खण्डों में विभक्त किया है । प्रदेश के हिन्दी कवियों से आपका परिचय हो सके इसीलिए हमारा यह प्रयास है । हो सकता है किं कुछ अज्ञात कवियों के कृतित्व के बारे में यहां उल्लेख न कर पाए हों उसके लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं ।

हम आशा करते हैं कि भविष्य में यदि हम इस प्रकार का एक और काव्य-संग्रह प्रकाशित करने की योजना बनाएं तो हिन्दी के विद्वान हमें सहयोग देकर इस प्रदेश में हिन्दी पर हुए काम को प्रकाश में लाकर हिन्दी जगत को उपकृत करेंगें।

श्याम लाल रैणा

अनुक्रम

क्रमांक	कवि का नाम		पृष्ठ

कविता अतीत की

क्रमांक	कवि का नाम		पृष्ठ

कविता संक्रान्तिकाल की

क्रमांक	कवि का नाम		पृष्ठ

कविता वर्तमान की

क्रमांक	कवि का नाम		पृष्ठ

कविता अतीत की

कवि परस राम

(सन् 1612 ई॰ - 1692 ई॰ - जम्मू)

संसार वैराग्य काल निर्देश वर्णन से कुछ पद्यांश*

ओइम् होत प्रात दिन सायं रजनी,
छिन-छिन अवध घटावे है ।
बीतत मास बहोर ऋृत बरखे,
फिर घूमत इत आवे है ।।
बालपना खेलन मो खोयो,
यौवन रस-पचिहारा है।
बृद्ध भयो तब चिंता व्यापी,
बाज्यों कूच-नगारा है ।।
जब अंतक गल-फांसी डारा,
हाथ मोड़ पछुताता है ।
परसराम शिव नाम जपो,
इह समा अकारथ जाता है ।।
मानुष देह मिली मणि उत्तम,
जाको मर्म न पावे है ।
भूले जान काच को मणियां,
ज्यों खलवारे खावे है ।।
बार-बार नहीं ऐसी बिरीयां,
कहां फिरे मदमाता है ।
परस राम शिव नाम जपो,
इह समा अकारथ जाता है ।।

* * *

---

* पांडुलिपि संपादक के निजी पुस्तकालय में

क्यों आसा के महल सुआरे,[1]
घटिका की सुध पाई है ।
इह दुनिया सब चलता डेरा,
कहो तू ही सीख सीखाई है ।
इह दुनिया सभ ज्यों आतशबाजी,
ज्यों ही रंगत मासा[2] है ।
जैसे नाटत आसुरीं माया,
इंद्र-चाप वत भासे है ।।
जो जामें रचत निंरतर,
सो जम-हाट बिकाता है ।
परसराम शिव नाम जपो,
इह समा अकारथ जाता है ।।

* * *

---

1. सुआरे (डोगरी) - बनाए 2. मासा (डोगरी) - माशा

कवि जगन्नाथ चन्द्र

(सन् 1620 ई॰ - 1715 ई॰ - जम्मू)

गुरू - उपमा से कुछ पद्यांश*

अष्टअंग सो दंडवत प्रथम कीजे परनाम ।
जगन्नाथ, करि है गुरू सव विधि पूरन काम ।।

चौपाई

श्री गुरू देव चरण चित लावो ।
हृदय ध्यान धरि सीस नवावो ।।
करि अस्तुति परिकरमा दीजें ।
तन, मन, धन समर्पण कीजें ।।

★ ★ ★

जगन्नाथ तीन पुर माहीं,
गुरू बिनु काहु की गति नाहीं ।
गुरू आवत आगे होई ल्यावे,
विदा होत पहुचावन जावे ।
सरधा सहित करै परनामा,
जो चाहै हरिपुर विश्रामा ।

★ ★ ★

बछिया सहित दुधारो गावै,
गुरू हित आनि देई सुष पावै ।
तन, मन, धन अपना कछु नाहीं,
गुरू गुरू सुमरी लेहु मन माहीं।

★ ★ ★

सकल भूति तीरथ करि आवै,
सो फल गुरू चरित्र पढ़ी पावै ।
संध्या प्रात दिवस मध्याना,
गुरू चरित्र को करे बषाना ।

★ ★ ★

---

*पांडुलिपि संपादक के निजी पुस्तकालय में

क्यों आसा के महल सुआरे,[1]
घटिका की सुध पाई है ।
इह दुनिया सब चलता डेरा,
कहो तू ही सीख सीखाई है ।
इह दुनिया सभ ज्यों आतशबाजी,
ज्यों ही रंगत मासा[2] है ।
जैसे नाटत आसुरीं माया,
इंद्र-चाप वत भासे है ।।
जो जामें रचत निंरतर,
सो जम-हाट बिकाता है ।
परसराम शिव नाम जपो,
इह समा अकारथ जाता है ।।

* * *

1. सुआरे (डोगरी) - बनाए 2. मासा (डोगरी) - माशा

कवि जगन्नाथ चन्द्र

(सन् 1620 ई० - 1715 ई० - जम्मू)

गुरू - उपमा से कुछ पद्यांश*

अष्टअंग सो दंडवत प्रथम कीजे परनाम ।
जगन्नाथ, करि है गुरू सव विधि पूरन काम ।।

चौपाई

श्री गुरू देव चरण चित लावो ।
हृदय ध्यान धरि सीस नवावो ।।
करि अस्तुति परिकरमा दीजें ।
तन, मन, धन समर्पण कीजें ।।

* * *

जगन्नाथ तीन पुर माहीं,
गुरू बिनु काहु की गति नाहीं ।
गुरू आवत आगे होई ल्यावे,
विदा होत पहुचावन जावे ।
सरधा सहित करै परनामा,
जो चाहै हरिपुर विश्रामा ।

* * *

बछिया सहित दुधारो गावै,
गुरू हित आनि देई सुष पावै ।
तन, मन, घन अपना कछु नाहीं,
गुरू गुरू सुमरी लेहु मन माहीं।

* * *

सकल भूति तीरथ करि आवै,
सो फल गुरू चरित्र पढ़ी पावै ।
संध्या प्रात दिवस मध्याना,
गुरू चरित्र को करे बषाना ।

* * *

---

*पांडुलिपि संपादक के निजी पुस्तकालय में

सात समुद्र करे मसी पानी,
लेष न भार अठारह षानी ।
कागद भूमि समस्त बनावै,
सकल पात वृक्ष के ल्यावै ।
वरने सहस्र सारदा माई,
लिखे कोटि चतुरानन धाई ।
गुरू-महिमा को पार न पावै,
जगन्नाथ जन कछु गुण गावै ।
संवत् सत्रह सै अरू साठे,
माघ मास उजिआरी आठे ।
भरणी इंद्र अरू मंगल वारी,
गुरू चरित्र भाषा विस्तारी ।

दोहा

भूला होहु जो हरिजनो, मात्रा विंदु विचारी ।
हाथ जोरी विनती करों, लीजो सकल सुधारी ।।
स्वामी तुलसीदास के, सेवक अति हें हीन ।
जगन्नाथ भाषा सरस गुरू चरित्र गुण कीह ।।
जल तें थल तें राषीयो षीला बंधन पार ।
मूरख हाथ न दीजयो कहत चरित्र पुकार ।।

★ ★ ★

कवियत्री रूपा भवानी

(सन् 1625 ई॰ - 1719 ई॰ - कश्मीर)

संतोष समाद् एक आसन पर
मैं यूं लगाया प्रेयम का पथ
दृढ़ किया बालवाशों आंखियों का
ज्योति स्वरूप क्यों करूं मेरे से तेरे का

* * *

अपने घर आया आप सांई,
जो कुछ मैं था अब नाहीं ।
यह बोध आया गुरू की बड़ाई,
जिन गुरू ने दिया मन का तत्व बताई ।

* * *

कौन जाने तेरा स्वभाव,
प्रभाव परमानन्द जी,
जो स्मरे हृदय में पावे
जैसी प्रभा भास्कर जी ।

* * *

कवि देवीदत्त

(सन् 1721 ई॰ - 1809 ई॰ - जम्मू)

[महाभारत-द्रोणपर्व-हिन्दी-पद्यानुवाद "वीर विलास" के प्रथम अध्याय की भूमिका से कुछ अंश]

दोहा

चरण कमल गुरूदेव के विमल ज्ञान की खान ।
निसि दिन दत्त हियै बसैं करत दुरित की हान ।। 1 ।।
तिहि प्रसाद कविता करौं अपनी मत अनुसार ।
शब्द अर्थ चूके तहां कोविद लेहु सम्हार ।। 2।।

कवित्त

पिंगल मैं पंगु अंग भाषा कौन जानत हौं,
बड़े गूढ़ ग्रन्थनि के पंथ मै थकत हौं ।
बैठ्यो न समाज कवि राजन के ताकि पुनि,
सुनि है न मीठी बाणी ऐसो मंदमत हौं ।
एक है अधार गुरू सूरज नारायण जू के,
चर्नन की धूर पूर सीस मैं घरत हौं ।
देव देव मानी ऐसी तीन लोकु रानी जूकी,
कृपा हूं ते भारत कहानी उचरत हौं ।। 3 ।।

दोहा

जिन न सुनी भारत कथा जन्म अकारथ तास ।
ताते सुनिये चित्त दै कौरव पाण्डु विलास ।। 4।।
यद्यपि कविता दत्त की है गुण भूषण हीन ।
तद्यपि सुनि सुक वचन लौं हुलसै क्यों न प्रवीन ।। 5।।
भड्डु देस नरेस है पृथीपाल अभिधान ।
ब्रजवासी दासी भई जाकी मत जुत ज्ञान ।। 6 ।।

दोहा

भई सरस ब्रजराज सों प्रिथीपाल की प्रीति ।
गोसट वेद पुरान की करत सुनत नृप नीति ।। 13 ।।
कह्यो मधुर तिन दुहन मिलि बचन पुरोहित पास ।
द्रोणपर्व भाषा करहु ग्रंथ सुवीर विलास ।। 14 ।।
ताकी सासन पाइकै रच्यों द्रोन संग्राम ।
श्री भडवाल पुंडीर को प्रोहित दत्तू नाम ।। 15 ।।
संवत् वसु ससि वसु ससी सुक्लपक्ष मधुमास ।
वीरवार तिथि पञ्चमी वरन्यो वीर विलास ।। 16 ।।

(सम्वत् 1823 माघ महीने में अर्थात् 12 जनवरी 1766 ई०) वीर विलास ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

[कवि देवीदत्त कृत 'ब्रजराज पंचासिका' नामक खण्ड-काव्य के कुछ अंश । इस कृति में कवि ने अपने अभिभावक राजा रणजीत देव के राजकुमार ब्रजराज देव की कांगड़ापति राजा घमंडचंद के विरूद्व किये गये अभियान का वर्णन किया है।]

दोहा

एक दिवस चंबयाल को दूत पुकारयो जाई ।
वाको दुर्ग पठ्यार को लियो कटोच छिनाई ।।

सोरठा

यों सुनि उठ्यो रिसाई साई जम्बू नगर को ।
ता छिन लियो बुलाई लाइक सुत ब्रजराज दे ।।
कहो बचन समुझाई महाराज ब्रजराज सों ।
दूर करो तुम जाई बाढ्यो गर्व कटोच को ।।

दोहा

अजमत दे मनकोटिआ सम्सेर चन्द हन्ताल ।
दत्त बलावर को घनी मीआं अमृतपाल ।।
रतन दे जसरोटिया अरू जयसिंह बंद्राल ।
इन भूपन को साथ लै करहु गमन ततकाल ।।

* * *

बारह माह

[कवि देवीदत्त कृत 'बारह माह' से दो माह]

चेत में हेत बढ़े अति ही पिय सो नित बाग बिहारहि भावें,
बीन नवीन बसन्त के फूलन अंकरची सुख सेज सुहावें ।
गुंजत हैं अति पुंज निकुंजनि कोकल बोल अमोल सुनावें,
गौन करो मत दत्त विदेश एह ब्रेस गई पुन हाथ न आवें ।

* * *

सुखदाई तुलाई विछाई तरै पुनि ऊपर लेफ सुरंग घरें,
दर छादन छन्न कबार लगें धुख हैं अगरे जुं बखारी जरें ।
कोऊ केते उपाय करें तरनी उर लागै बगैर न शीत टरें,
कवि प्रोहत पोह में तात कहो कबु बाहर जेवै की बात करें ।

* * *

कवि देवीदत्त का लिखा वर्षा ऋतु पर एक कवित्त इस प्रकार है–

पावस नरेश घर आयो परदेस हुते,
आदर सो बादर नगारची पठाये हैं ।
मोर सरन्हाई करनाल रची येक तहां,
झील्ली गन आछ नरसीगे ही बनाए हैं ।
विद्‌युत बार नार नाचत अनेक भांत,
कै कै सनमान द्विज सारंग रिझाए हैं ।
भूमि पटरानी हरषानी पिय आवन में,
सावन के घोष घन सुख सो विहाए हैं ।

* * *

कवि देवीदत्त के फुटकर पद्यों में से कृष्ण भक्ति के दो पद्य उद्धृत हैं :-

तान परी जब कानन में सुध भूल गई जु भई हूं अंजानी,
भात में हिंगु बसार मिलावत दाल में डार दिया भर पानी।
लौन परयों न कहुं कविदत्त जु खीर में डारत दाड़िम छानी,
नंद कुमार करौं मनुहार रसोई समे मुरली न बजानी ।

* * *

प्रीतम मांगत भात जबै तव डार दई दरवी भर पानी,
दाल के मांगत भात दियो पिया पूछत है मन मे रिसयानी ।
नींदहु के मिस सों पयको समझाय कहों मन मांहि लजानी,
दत्त कृपा करि नंद के लाल रसोई समे मुरली न बजानी ।

* * *

कवि देवीदत्त स्वयं अपनी आर्थिक दशा के बारे में लिखते हैं-

आधो शरीर तियो हरि को हर
आधो दियो गिरराज की जाई,
ज्यों विधि शंभु अभाव भयो लखि
देव नदी उदधी उठि धाई ।
चंद्रकला गई अंबर मांही
पाताल गयो पुनि पन्नग राई,
ज्ञान प्रभूत गयो नृपहून को
भीष रही कविदत्त के आई ।

* * *

कवि मायादास*

भक्त कवि मायादास की निम्न पंक्तियां डुग्गर की रास मण्डलियां आज भी मंगलाचरण के रूप में गाती हैं –

डफरबाल डफ बाजें
होली खेलें अनूप ।
धन्य धन्य मायादास भगत,
जिन दिखाओ हरि को सरूप ।

*   *   *

निम्न पद्यांश पातन्याल गांव (ब्लाक मढ़) के जोगी शिवदास से उपलब्ध हुआ । (संपादक)

आई रे आई श्याम, बृजवन से ग्वारन,
मिलन चली राधे श्याम को,
तेरे दस्तीं मेंहदी लाई
राघा निरत करेंदी आई
आई रे आई..............
तू तो नंद का पुत्र कन्हैया
जिन सारी ब्रज मोह लेइया,
तेरे गल फूलों के हार है
काहन गोपियों का सरदार है
लाल जी का मुख चन्द्रमा,
सखियां नैन चकोर
निरख निरत वरयाद है
ज्यों पहाड़ी पर मोर
तेरी मैं जोगिन बन जाऊंगी,
दर दर अलख जगाऊंगी ।

*   *   *

---

*महाराजा रणजीत देव के समकालीन मूलतः ब्रज भाषा के कवि थे ।

कवि परमानन्द

(सन् 1791 ई० - 1885 ई० - कश्मीर)

[श्री कृष्ण का जन्म हुआ है और भगवान् शिव ने उनका दर्शन करने का विचार किया है और योगी का रूप धारण करके भिक्षा प्राप्ति का स्वांग रच कर गोकुल में पधारे हैं । इस दृश्य का अनुपम चित्रण कवि ने इस कविता में किया है ।]

भिख्या[1] मांगन सांग[2] बनायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।
दर्शन करने को ध्यान धरायो,
आयो सदासिव गोकल में ।।
नंगे सिर और नंगे पैर,
नन्दकेश्वर का सवारी था ।
अंग में भस्मा भभूत चढ़ायो,
आयो सदाशिव गोकल में ।।
हाथ में त्रशूल कान में मुन्दा,
सुन्दर मुख को करा कराल ।
घंटा शब्द और शंख बजायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।
अन्तर्यामी स्वामी देखा,
अन्तर बाहर पूर्ण मय ।
बाल कृष्ण का मुख उसने छिपायो,
आयो सदाशिव गोकल में ।।

★ ★ ★

लेकर दाना मुड़ आयो यसोदा,
वसुदेव का वासुदेव न साथ ।
सामने होके हाथ जुड़ायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

★ ★ ★

---

1. भिक्षा ।

2. स्वांग ।

यह बालक हे यसोदा माई,
त्रि जगतां दा स्वामी है ।
जिसको बतायो उसको बतायो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।
ना वेद आख[1] सके ना भाषा,
व्यास पराशर शुक देव ।
महिमा जिसकी हमको दिखयो,
आयो सदा शिव गोकल में ।।

★ ★ ★

1. कह ।

कवि विद्यानिधि*

(कवि देवीदत्त के पौत्र ओर शिव सेवक के पुत्र)

जसरोटा राज्य के वास्तव्य राजा हीरा सिंह के गुरू (सिक्ख इतिहास में प्रसिद्ध) जल्हा पण्डित ने देवीदत्त के पौत्र कवि विद्यानिधि को एक समस्या पूर्ति करने को कहा था । समस्या थी -- "सावन की झरी देख, लागी भरन घड़ीयां ।"

कवि विद्यानिधि ने निम्न लिखित कवित्त पढ़ा जिस पर प्रसन्न होकर उन्हें 500/- रूपये पारितोषिक मिला :-

प्रीतम विदेस पयान जब करन लागै,
प्यारी के कपोल चूम बातां यह करियां ।
हूजै न उदास आस राखौ मन पावस की,
सुनत यह बात बूंदां पलकन ते ढरियां ।
सम्वत् समान दिवस निसी बीत गये,
अवधि हूं चूक परी ताते हौं डरियां ।
कहत कवि विद्यानिधि विरहौं की सताई नार,
सावन की झरी देख, लागी भरन घड़ीयां ।

* * *

* कवि देवीदत्त के पौत्र कवि विद्यानिधि ने महाभारत के कर्णपर्व का हिन्दी पद्यानुवाद किया और पुस्तक का नाम 'वीर विनोद' रखा ।

कवि शिवराम

(कवि देवीदत्त के भाई नंदराम के सपुत्र)

सुकराला माता की महिमा का वर्णन

घोर परी रहैं बाजन की
सुकराला भौन विराजित रानी,
झांजर फेर नफीर बजैं
वर देत विचित्र सब है जग जानी ।
आवत संत हुलास भरे
बर देत अतै तुह ही धन मानी,
कामनी गावत शैल खरी
वर देत मनोरथ मल्ल भवानी ।

★ ★ ★

कवि त्रिलोचन

(कवि देवीदत्त के भाई नंदराम के पौत्र और कवि शिवराम के सपुत्र)

कवि त्रिलोचन ने सम्वत् 1919 (सन् 1862 ई.) में महाभारत के शान्ति पर्व का हिन्दी पद्यानुवाद किया जिसका नाम "नीति विनोद" रखा। यहां "नीति विनोद" की भूमिका से पद्यांश प्रस्तुत है :-

पिंगल न जानों नहीं जानौं रसराज हूं को,
रसिक पियारी विहारी सों टरत हौं ।
भाषा कौ न लेश न प्रवेश कविशयन में,
चार अपगुण के फल सौं डरत हौं ।
एक जगदम्बा गुरू, सूरज नारायण के,
चरण कंज धूर निज शीष पर धरत हौं ।
पाई के निदेश श्री नरेश रणवीर जू की,
राजन के हेत राजनीति ग्रन्थ करत हौं ।

कवि त्रिलोचन कृत 'गदाधर शतक'[1] से कुछ पद्यांश :-

श्री गुलाब सिंह प्रथम हे दूजो घ्यान मृगेस,
श्री सुचेत सिंह तीसरो तीनो भूप नरेस ।
जन्म लिए जंबू नगर मात पिता के पास,
श्री रणजीत मृगेस ढिग लवपुर[2] भए प्रकास ।
शासन पाइ रमेश की चित महि धरी हुलास,
श्री गुलाब सिंह यश कहों जे तो बुद्धि प्रकाश ।

* * *

---

1. प्रो॰ रामनाथ शास्त्री के निजी पुस्तकालय से - साभार

2. लाहौर

प्रबल प्रचंड भुजदंड सों नुआए भूप,
कीनने सम काम धाम सोभा को पायो है ।
जंबूपुर ईश महाराजा श्री गुलाब सिंह,
डुग्गर जलंधर में जाको जस छायो है ।
सुंदर सुनूप अति सोहत अनूप तेज,
राखत चहुं कूट हूं की सुरत-सह्मर है ।

★ ★ ★

सोरठा

प्रोहित रच्यो बनाई ताकी शासन पाई के,
नाम घरयो सुखदाइ ग्रंथ गदाधर शतक यह ।
सुनि सुनि भूपति वैन आनंद सों अति ही भरयो,
निज मन तीनहिं नेन लाग्यो करन विचार तब ।

★ ★ ★

दोहा

पहुंचयो काशी देश जव भूपति आनंद पाइ,
विश्वेश्वर के जाइ के लीनो सीस नुआई ।
करि प्रनाम विश्वेश को अन्न पूरना देष,
पंड़ित काकाराम को किए प्रनाम विशेष ।

★ ★ ★

अय सी भांत पूजन के भूप श्री गुलाब सिंह
ता दिन में पांच कोशी करन हूं को आयो हे ।
पूजा उपचार सभ पाइके अनेक भांति,
पंड़ित श्री चरनदास ता संग सिधायो हे ।
होई के प्रसन्न नीकें फिरयों काशी खेत हूं,
मै ठौर ठौर पूजन के संग आनंद सों छायों है ।
कीनी महाराज पांच कोशी पांच दिन हूं मे
पाछें अन्न पूरना को दर्शन पायो हे ।

★ ★ ★

सवैया

संवत् विक्रम वेद शशि नव भूमित भूप कि शासन पाई,
प्रोहित ग्रंथ रच्यों कश्मीर में श्री महाराज हुं की यश ताई ।
या के पढ़े ते बढ़े अति पुन्य, सुने ते घटे पुनि पाप महाई,
चारो वरन लहे मन वांछित होत प्रसन्न भलेय दुराई ।

* * *

इति श्री मत्प्रवल पुंडीर भडवाल पुरोहित
कवि देवदत्तानुज नंदराम शिवराम तत्सूनु
त्रिलोचन विरचितो गदाधर शतकः समाप्तः
शुभं भवतुः ।। तत्सत् ।।

* * *

लाला रामधन

(सन् 1822 ई० - 1898 ई० - अखनूर, जम्मू)

बसन्त

बसन्त की बहार आई, शाखें गुलजार आई,
बुल बुल मिल डार आई, फूल फूल बोलें ।
मूल-फूल, डाल-फूल, पातन के नाल फूल,
फूल-फूल कलि-कलि, सरसत मुख खोलें ।

★ ★ ★

आए तो बसन्त सखी, घर में नहिं कन्त सखी,
वो तो बे अन्त सखी, मोर मुकुट वारे जी ।
फूल रही सरसों, कहीं जाय के हरसों,
क्यों लाई हैं बरसों? श्याम सुन्दर कारे जी !
जिनके हैं कन्त पास, करती हैं सुख विलास,
हौं बिन तुम उदास, प्राण पान हारे जी ।
रामधन दासी की, सुनियों बृजवासी की,
दरस की प्यासी की, रहत क्यों हो न्यारे जी !!

★ ★ ★

चरसी

सूटे के शकैये पपैये हैं कई कई ।
मुफ्तखोरे बहुते हैं चरसी कहलावते ।।
जहां जहां चिलम फूंकें, वहां वहां जाई ढुकें ।
मौका से नहीं रूकें निजम साथ जावते।।
चिलम हाथ आवे तो वो कैसे रह जावे ।
चिलम बीच मैल सड़े, चित को जलावते ।।
रामधन हरे-हरे, इन से रहे परे-परे।
मरने से पहले ही ये नरक को हैं पावते ।।

★ ★ ★

मस्त कोई भंग में, चरस में, अफीम में हैं
कोई मस्त साहब की चरचा बखाने हैं ।
रामधन जिसकी है हिये में जिसको लगन
वही राम उसको, राम उसी में समाने हैं ।।

* * *

कलियुग

कलियुग जब आयो - आ कदम जब टकायो,
सब कर्म-धर्म धायो - जा बैठ्यो पाताल में ।
जोरन बेजोर हुए - औरन के और हुए,
साधन के चोर हुए - बहुते कलुकाल में ।
घट बोल, घट तोल - लेते हैं गांठ खोल,
उमर घट, गुबर घट - फंसे मोह जाल में ।
पापन को जोर बड़ा - पुन्न कमज़ोर बड़ा,
रामधन सोर बड़ा - जगत जंजाल में ।।

* * *

पहाड़ी लोग

यह लोग जो पहाड़ी - सदा बसत हैं उजाड़ी,
हाथ परठी औ, कुहाड़ी - यही इनके हथ्यार हैं ।
सीस घरें फटी टोपी - मैली पतली लंगोटी,
हाथ बीच रहे सोटी - पीठ धरत बहु भार हैं ।
जब जब दुःख होते - ये हैं करमों को रोते,
अज्ञान में हैं सोते - नित पड़ती बगार हैं ।
रामधन कहे सार - मत देओ दोस यार,
ऊंच नीच को व्योहार - होत कर्म अनुसार है ।।

* * *

कवि मीहां सिंह करनैल

(सन् 1837 ई० - 1907 ई०)

[कवि मीहां सिंह करनैल की पुस्तक 'वोध विलास'[1] से महाराजा प्रताप सिंह के राज्याभिषेक (14 सितम्बर 1885) के अवसर पर जम्मू (जम्बू पुर) की लावन्यता के वर्णन से कुछ पद्यांश]

कवित्त

जंबू पुर धन्य आज धन्य मही मंडित पें,
धाम धाम रचना लावन्यता नयारी हैं ।
पौर पौर यें उतंग धज सों पताक ध्वज,
छाजे छव देत सेत पीत अर नसारी हैं ।
त्योंहि राज भौनन मो कंचन कलस साजे,
तोरन निवार बंद रंजित सवारी हैं ।
आम्र दल कोमल कुसम बीच बीच,
रचे रूची सों अनूप दास उपमा उघारी हैं ।

* * *

विछे हैं बिछौने फरस छव सों सरस सुभ्र,
पाय न परस मृदूमोद मनजागे हैं ।
लाल लाल लालटेंन हरित वर्ण षंभदास
मानों रंभतर ठौर ठौर लागे हैं ।
पुर की लावन्यता बनी है नीके भांत भांत,
बीथी, वाट, हाट, फाट सगरे संवारे हैं ।
वापि तडाग कूप विसद पाथोद भये,
वाग वाटिकादि सब सौच कर डारे हैं ।
राजा राऊ गौरमिंट आन साहिवान हेत,
रचे रूची नवल धवल धाम भारे हैं ।
सिज्जा परयंक सैन सुषद समाज दास
थापित किये हैं वर वास न्यारे न्यारे हैं ।
और जे रईस पंच पंडित महंत संत
आदर सों राज अवशेष हूं पे आये हैं ।

* * *

---

1. पांडुलिपि संपादक के निजी पुस्तकालय में

ठौर ठौर होत कल नृत्य गीत राग रंग,
जुगल जंबू रवेन वाजत सितार हैं ।
न कन ही हाव-भव सारस आलाप,
सुर तान न तरंग अंग अंग वधुवार हैं ।

★ ★ ★

लटक लटक कहूं नाटकी करैं है नट,
चटक चिते तें चित्त अटकै अरार हैं।
डंकत दमामा द्वार नौवत नगार दास,
भेर भरैं घोष मानों तोषत संसार हैं ।
जुरे हैं अनेक मानों जाचिक जहान,
आय भांड कलावंत सूत मागद खिलारी हैं ।
तान ऊ तरान राग विरद बषान करैं,
कौतुक कलान केल कै कै मनहारी हैं ।
रूची सों दिखावै ऊ रिझावैं रीझ वारन को,
पावैं मन इछत इनाम काम सारी हैं ।

★ ★ ★

जुगो जुग जीवैं जग जंबूपत प्रजापाल,
मांगे वरदान गान देवता मनाई हैं ।
होंहैं अविषेक राज आज इन कहं सफल,
अटिल प्रताप पुन्य प्रभुता बडाई हैं ।
देखै नित नूतन आनंद उत्साह दास,
नवल विलास लीला नवल सुहाई हैं ।

★ ★ ★

पूर रहो मंगल समाज सब ठौर ठौर,
मंगल ही गान कल मंगल उचार है ।
मंगल ही खान पान मंगल पहरान पर,
मंगल ही हास वास मंगल प्रचार हैं ।
मंगल ही सुनै धुनै मंगल विलोकै दास,
मंगल को समय रमय मंगल विहार है ।
मंगल सुहावैं भावैं मंगल मनावैं,
आज पसू पक्षी जीव जंत मंगल आधार हैं ।

★ ★ ★

[कवि मीहां सिंह (करनैल / कुमेदान) कृत "भक्त विनोद" नामक ग्रन्थ से भक्त नाभादास के चरित से कुछ अंश]*

ग्रन्थ का आरंभ इस प्रकार है-
ॐ स्वस्ति श्री गणेशाय नमः।।
अथ भक्त विनोद ग्रंथ कृत कवि मीहां सिंह कमुेदान लिख्यते ।।

दोहा

एक रदन सुख सदन सुर, करि कल वदन उदार,
बंदहुं लंबोदर चरण, हरण दुरत दुख सार ।।

दोहा

श्रवण सुखद मंगल करन हरन तृवध तप सूल,
भक्ति महातम कथन अब करहुं सकल सुख मूल ।
हृदय प्रकासन ज्ञान रब दहन दुरत मदमारू,
श्री पति चरण सरोज नित नवल देन रति चारू ।

चौपाई

पश्चिम देस ललित मनभावा, तहां नरेस मान हरिगावा,
युक्त सकल सभ ऋद्धि उदारा, विजय शत्रुजग की रति वारा ।
विप्र धेनु प्रति पाल कराई, भक्त संत सज्जन सुखदाई ,
धरम निरत संकुल गुणसागर, दाया दान मान मति नागर ।
तास रूचिर गुरूदेव सुहाए, कृष्णदास सब लोगन गाए,
भक्त प्रधान निपुन गुण ज्ञाना, विश्व जास कर वद रसमाना ।
सज्जन सरव भूत हितकारी, विरत विवेक निरत वृत धारी,
भूप देस निज रूचिरू सुहाई, रंमय पुरी एक विरचाई ।
गुरूवर हेतु परम मन लीना, गलता नाम प्रकट जग कीना ।
तहां जितेन्द्र कृष्ण मुन राज्यो, युक्त सकल निज संत समाज्यो ।
अग्र कील मुनिवर सिष दोई, गुरू पर जलज भक्ति रत सोई,
पूज्यऽधि करण हेतु तजि गेहा, गवने विपुन दिवस इक तेहा ।

* * *

---

* रणवीर अनुसंधान पुस्तकालय, जम्मू - नं० 960

भक्त सुदामा चरित से कुछ पद्यांश

चौपाई

कृष्ण कमल पर प्रेम सुहावन,
नित नव सरस होत गयी पावन ।
कीर्तन कथा कृष्ण भगवाना,
कृष्ण स्मरण कृष्ण पद गाना ।
कृष्ण विनोद भजन सुखदाई,
रटत नरंत्र कृष्ण द्विजराई ।
मूरति कृष्ण ललित घनकारी,
अंतकाल निज मानस धारी ।
कृष्ण प्रसाद सहज तजिकाया,
कृष्ण लोक कहं विप्र सधाया ।
अस प्रकार ए चरित सुहावन,
संसृति कृष्ण भक्ति प्रद पावन
मै निज अलप जथा मति गावा,
मानस प्रेम प्रमोद बढ़ावा ।
सरव सुखद इह मंगल मूला,
जे नर सुनहिं श्रवण अनुकूला ।

सोरठा

कृष्ण कमल पदनेहु, उपजहिं अवरिल भक्ति मय ।
होहिं मुचित संदेहु, तांकर कृष्ण प्रसाद सब

दोहा

दुख दारद ज्वर मूल सब, दुंद दोष वपु त़ास,
कृष्ण कृपा ते मिटहिं सब, संपति सुजस प्रकास ।

* * *

इति श्रीमन्महाराजाधिराज जंबू कश्मीराद्यनेक देशाधि पति प्रभुवर श्री रणवीर सिंहाज्ञप्त कवि मीहांसिंह विरचिते भक्त विनोद ग्रंथे भगवद् भक्ति महात्मये सुदामा चरित कथनं नाम नवमः सर्ग ः ।।

* * *

कवि पं० नीलकंठ*

कीर्ति विलास[1] से कतिपय अंश

उों स्वस्ति श्री गणेशाय नमो विघ्नविनाशिने,
गज वक्रैक दंताय विद्या वुद्धि प्रकाशिने ।।

दोहा

वंदों श्री जगदीश को गुरू चर्ण धर ध्यान ।
गज मुख गौरी पूजकै पाछे करों बखान ।

कुंडली

रघुकुल मांही विचारिए रक्षक श्री कुलदेव ।
वंदो श्री पर ताहु के वर्णो रघुकुल भेव ।।
वर्णो रघुकुल भेव सेव सेवक वरदाई ।
त्रिकुटा श्री परमेश्वरी भैड़ कालिका माई ।
नील कंठ कवि ज्यों कहै श्री रघुनाथ सहाई ।।
मिल पांचो रक्षक भए केवल रघुकुल मांहि ।।

दोहा

ज्यो विश्वंभर विश्वगत विश्वरूप भगवान् ।
राजा त्यों हि विचारिए घट घट ज्यों इक भान ।।

सूर्य रूप परजा किआ उतपंत जो जग महि ।
अनीति अंदेश दूर कर नीति मार्ग दरसाहि ।।

सप्त द्वीप नव खंड में भारथ खंड अनूप ।
ता महि पुर जंबू लसै सभ देसन् को भूप ।।

जो सूरज के वंश में जंबूपत जमूआल ।
सात भूप वर्णन करों भाषा वचन रसाल ।।

---

* कवि नीलकंठ महाराजा रणवीर सिंह (राज्य काल सन् 1857-85) के समकालीन थे ।

1. प्रो० रामनाथ शास्त्री के निजी पुस्तकालय से - साभार

कवित्त

हरी देव जंबूपत, गजे सिंह आगे सुत,
आगे ध्रुव देव ताको सूर्त सिंह साज है,
आगे श्री जुरावर सिंह श्री किशोर सिंह
ताकोऽ आगे गुलाब सिंह पदवी महाराज है ।
अब ही रणवीर सिंह गुलाब सिंह जू की अंश
युग युग लों करे राज जाहू सो काज है,
धन्य श्री किशोर सिंह श्री गुलाब सिंह धन्य
धन्य रणवीर सिंह हिन्दू पत लाज है ।।

जंबू पत महाराज राजत श्री गुलाब सिंह
ताकोऽ नुज ध्यान सिंह सो लहौर राज है,
ताकोऽ नुज श्री सुचेत सिंह भयो राम नगर
तीन भए सूरज सम इंद्र लौं समाज है ।

सारे राजवारे संग साज के समाज खरे
बाजत घन वाजे बीच वाजत नगारे है
आगे है वहार मौज बर्तत जो राजनीत
धारे प्रीत वस्त्र शस्त्र भूषण सहूय रहे
होत है हुलास जो विलास देख राग रंग
बैठे सुख संग मौज देखता अपारे है
कहे कवि नीलकंठ श्री रणवीर सिंह
टेढ़ी मूछ वारे पैं करोर राज वारे है

* * *

मानत वेद पुराण न भेद सु देवसिआवर से गुण जामे
कंठ कहे कुलभूषण जो अब सो रणवीर हरीमन भामे ।।

* * *

दोहा

रणवीर सिंह महाराज का कोकर सकैं वखान,
जिन विद्वजन राजी किए दे दे अगनित दान ।।

कवित्त

दानन के विधान माहि कल्पद्रुम जैसो जान
परहित के काज सदा भानु ज्यो प्रकास है
धीर अरू गंभीरता में राजत ज्यों सिंधु राज
तापन को दूर करत चन्द्र ज्यों अकास है,
चिंता के समुद्र मांहि मज्जत नर नारी सभ
तिन्ह के हित जान जगत नाव लौं विलास है
गौरव में रतन सानु भूपत रणवीर सिंह
युग युग लौं करे राज नीति को हुलास है ।।

दोहा

सज्जन की विपता हरी दुरजन विपता दींन,
अरीहरी साधन कियो ऐसे बुद्धि प्रवीन ।।

★ ★ ★

अवर कहा विनती करों तुम सभ जानत सार,
लज्जा हम री राखिओ विपत विदारन हार ।।
इति श्री को आद लै श्री महीप गुण जोय,
नीलकंठ भाषा रची सो संपूरण होय ।।

★ ★ ★

***इति श्री भवनाथ सुत नीलकंठ कृत भाषा
प्रकाशे कीर्ति विलास वर्णनं समाप्तम
शुभम्भयात्सर्व जगताम् संवत् १९४२
आसूज प्र. २१ शुभमस्तु समाप्तोयमिति ।।***

कवि कृष्ण जू राज़दान

(सन् 1850 ई० - 1925 ई० - कश्मीर)

परमशक्ति वरवुन परमेश्वर है
पूज्य शंकर है त्रिभुवन सार ।
ब्रह्मरूप असवुन क्षीर सागर है,
विष्णु रूप धारवुन नगि अवतार ।[1]

* * *

राधा कृष्ण रामा श्यामा, अरे नन्द लाला अरे निष्कामा,
त्रिजगत पाला दीन दयाला अरे नन्द लाला बंसरी वाला।

* * *

घिरते हैं हम रात दिन यह कर्मो का है फेर,
कृष्ण चन्द्र जब मिले तब कब रहे अंधेर,
अब वह सूरज मुख दिखाए आता है पैगाम
श्री कृष्ण मथुरा गया है, हम से लिया आराम ।

गोपियों और श्री कृष्ण के सत्य रूप की और संकेत करते कवि लिखता है-

वृत्तियां हैं गोपियां तुम आत्मरूपी हो मोहन
आओ खाओ भाव का दूध और दही सजरा मखन
तुम हो मन और प्राण में ले मेरा अन्तः करण
कृष्ण तेरे ध्यान में बन गया बस्ती को बन ।

* * *

भजन की पंक्तियां -

देह भ्रम रूपी शेर को है मद से आंखें लाल,
उसको पकड़ो खींचो बांधो मारो उतारो खाल
उस सिंह आसन के ऊपर अपना आसन डाल
गोपी नाथ माखन चोर मदन मोहन लाल ।

---

1. इस पद्यांश में वरवुन, असवुन और धारवुन कश्मीरी भाषा के शब्द हैं ।

राम महिमा

भीलनी का जूठा राम जी ने खाया उत्तम पाया प्रेम से
राजधानी छोड़कर बन में आया सच मान कर बाप की आज्ञा,
ऐसा सतगुण देवतों ने गाया, उत्तम पाया प्रेम से
कृष्ण ने द्वैत भाव मन से हटाया, राम को जाना परम आत्मा,
राम का नाम ज्ञान योग में लाया, उत्तम पाया प्रेम से
राम राम करके आसन बिछाया, चित में लाया राम का नाम
राम का नाम शिव शंकर को भाया, उत्तम पाया प्रेम से ।

* * *

अयोघ्या में चलो देखो अजब क्या तमाशा है
जिन व इन्सान रीछों बंदरों का खूब चर्चा है
अभी आए हैं लंका जीतकर और देखकर दशरथ
प्यारे राम जी के सबको दर्शन की तमन्ना है
अयोघ्या में ....
बिलाशक मालिके कुल शक्ले इन्सान बन के आया है
नहीं यह इन्सान नहीं है नूर यह नूरे तजल्ला है
बगलगीरी को आए है तीनों मादरां अपने
शत्रुघन और भरत, कैकेयी, सुमित्रा, कौशल्या है ।

* * *

कवि ठाकुर जी मनवटी

(सन् 1850 ई० - 1923 ई० - कश्मीर)

कर दया तू है दयालू दे तू आंखें ज्ञान की,
तम से गम में थम गया हूं चाह मुझे निर्वाण की,
माया का विलास सारा तुम ने जो उत्पन्न किया,
मैं उसी में सो गया हूं तुम जगाओ कर दया ।

★ ★ ★

मन तुम बिन तड़पत है हे कृष्ण मुरारी,
श्री राम राम राम राम राम जी,
भ्रमर जैसा मैं घूमता गम पाता हूं
बहुत भ्रम से मुझे गम न छूटे फिर भ्रम से ।

★ ★ ★

कवि वामदेव*

कवि देवीदत्त के पौत्र विद्यानिधि के पौत्र तथा रामधन के सपुत्र कवि वामदेव कचहरी की कार्यवाही से तंग आकर लिखते हैं -

दै हमैं अरजी जसरोटा की बजारत सों,
तीन बरस गुजरे सर्‌यो नहीं काम है ।
दौर - दौर थक हम जम्बू जसरोटा सों,
कागद अस्टाम लेते छीन लिया दाम है ।
पूछत बंधु अरू सब भाई मेरो,
कौन देखो न्यांऽ तुम बैठो जाई ग्राम में,
कहत कवि 'वामदेव' श्री महाराज प्रताप सिंह,
दालत के हाकम जें करते कौन काम हैं ?

* * *

---

* कवि वाम देव महाराजा प्रताप सिंह (सन् 1885-1925) के समकालीन थे ।

पण्डित संतराम शास्त्री

(सन् 1860 ई० - 1945 ई० - मानसर, जम्मू)

दोहा

वंदन करूं गणेश को, गुरू वंदन के साथ ।
गीतावली इस नाम से, कापी करूं प्रकाश ।।

बावे वाली माता की वन्दना

जम्मू नगर इक दुर्ग सुहावे, अति सुन्दर बावे किला कहावे ।
लांघि तवी नदी पर्वत ऊपर, करि रचना किसी जम्मू भूपवर ।
दुर्ग के अंदर बना शुभ मंदिर, यहां देवी प्रतिमा अति सुंदर ।
देवी प्रतिमा का घ्यान लगाकर, वंदौं श्रीमति पद छवि सागर ।
ध्यान लगाकर वंदन करूं मैं, विघ्न हारिणी प्रथम सिमरूं मैं ।
जम्मुआल नृप सेवित अंबे, जय जय कालिके जय जगदंबे ।
चंड मुंड मुख मंडित अंगे, रूंडित भटनृत संपद वंदे ।
जय जय दुर्ग निवासिनी, जय जय दुर्गे दुर्गति नाशिनी ।
पुशु पूजन से भई तोरि भेंटा, ध्यान धरें तेरो नगर के सेठा ।
तुम्ही शाक्ति तुम्हीं भक्ति उजागर, विभु व्यापक तुम्हीं जीव चराचर ।
निराकार तुम्हीं सगुण समाई, जग रचना तुम्हीं ब्रह्म सहाई ।
तुम्ही ब्रह्माणी जगत विवर्द्धिनी, तुम्ही रूद्राणी जगत् विसर्जनी ।
तुम्हीं जग पालिनी वैष्णवी माता, तुम्हीं त्रिगुणा हर विष्णु विधाता ।
संतराम करूं वंदन सादर, नहिं जानूं मैं तब गुण सागर ।
तुम्हीं शरणागत पालिनी माता, तुम्हीं शुभ करिणी मंगल दाता ।

* * *

कवि हरिश्चन्द्र शर्मा

(1862 ई० - 1959 ई० - जम्मू)

कवित्त

हरियो न हिमद बिसारियो न हर नाम,
जाहु विध राखे राम ताहु विध रैहो री
इक्क दिन 'सम्मन' के थे हेठ घोड़े हाथबाजे
बाजने नगारे साथ थे ।
एक समै पाओं - प्यादे सीस बोझ सै होरी ।
एक समै द्वारन पै भखारन की भीर पड़ी,
एक सै आयो आप पर द्वार बैहोरी ।
देखे अब के जमाने मै अपने बेगाने,
दोस किसी को न दैहो री ।
दोस किसी को न दैहो री ।
दोस है निज निज कर्मन को,
शिव शिव जापो दोस किसी
को न दैहो री ।

★ ★ ★

कवि वासुदेव उपाध्याय

*[सुकराला के पुजारी शिवनंदन के वंशज कवि द्वारा
अपनी वंश परंपरा संबधी कवित्त]*

बड़े जो हमारे पाछे कविता में प्रवीण भये,
सारदा भवानी जू सों ऐसो वर धारो जू
प्रथम त्रिलोचन जाके कवि महादेव भये,
कविता के ग्राम जानो कवियन भारो जू ।।
तीजो सिवनन्दन जगत में परसिद्ध भये,
जाके गणराज नाम अम्बा के उचारो जू ।
आज के जमाने किम्मत कविता की जानें कोऊ,
कौन हूं के आगे जस जाय मैं पुकरौं जू ।।

* * *

ब्रह्मचारी शिवप्रसाद त्रिपाठी

(सन् 1878 ई० - 1975 ई०)

शिव स्तवन

अपराजित- निस्सीम पराक्रम
अधिष्ठान शम्भु - भगवान ।
शारणागत - वत्सल नित - निश्चल,
पूर्ण ब्रह्म - विभु -दया निधान ।।
आशुतोष करूणा- वरूणा-लय,
त्रिभुवन-पति पुशपति -जगदीश ।
अभयंकर प्रलयंकर शंकर,
विश्वम्भर विश्वेश्वर ईश ।।

महाकाल विकराल - काल के,
काल कलेश्वर कालातीत ।
निष्कलङ्क शत- शशि-सम उज्वल,
सर्व-पूज्य शर्व अविगीत ।।
त्रिगुणातीत अतीत सर्व के,
नित्य निरज्जन अति - निर्भीत ।
सर्व विदित अविदित - अनादि-तम,
अद्भुत - विक्रम परम पुनीत ।।

मृत्युंज्जय सर्वंज्जय शम्भो,
अपरिमेय अज अजर अजेय ।
पूण्य पुञ्ज निष्पाप उमापति,
सर्व भूत-भवन भव - गेय ।।
अविकारी ब्रह्माण्ड बिहारी,
सर्व-पाप-हारी त्रिपुरारि ।
मनोकामना-प्रपूर्ण-कारी,
सुर-सरिता धारी कामारि ।।

निखिल -ज्ञान-विज्ञान-विविध-विध,
विद्याओं के उद्गम स्थान ।
सकल कला कल्याणों के सब,
रत्नों के अक्षय-निधान ।।
रवि-सम-भस्वर हीरकादि मनि,
स्वर्ण विनिर्मित -गिरि-कैलाश ।
अन्धकार से रहित चतुर्दश,
भुवनों की भा का सा हास।।

अन्तरिक्ष-सुस्थित-उसगिरि पर,
कोटि कोटि शशि-सा भावान ।
रूद्र-रूप-धर-राजित सब के,
कर्ता धर्ता शिव-भगवान् ।।
मायातीत-महा-माया-पति
महा-महेश्वर महा-महान् ।
अमित असम्भव-सम्भव सब के,
करने में समर्थ मति-मान।।

सर्व सिद्धि ऋद्धि नव निधि के,
दाता सिद्धेश्वर भगवान् ।
सर्व-प्राणि-गण के सुख-दायक,
परम सहायक शक्ति-निधान ।।
अप्रतिम प्रतिभा प्रभाव के,
अधिष्ठान-अति महिमा वान ।
कष्ट-अरिष्ट-अनिष्ट-निवारक,
इष्ट-वस्तु देते नित दान ।।

* * *

कवि नीलकंठ शर्मा

(सन् 1881 ई० - ई० - कश्मीर)

जय जय प्रभु विभु दीन दयाला
जय जय राम खरारी ।
जय परिपूरण पीतम्बर - धर
अक्षर कष्ट निवारी ।
सर्वाधारा निर- आकाश
त्रिभुवन सारा प्यारा।
तू है सब में व्यापक निर्मल
तू है सबसे न्यारा ।
कर्त्ता धर्त्ता हर्त्ता भर्त्ता
भक्तन के हितकारी

*   *   *

हे रघुनन्दन जय रघुनन्दन
जय जय त्रिभुवन सार
नीलकंठ है दास तुम्हारा
त्रास निवारो जी
दिखलाओ अपूना सुन्दर मुख
दुःख संहारो जी ।
तू है सरजन हार
जय जय त्रिभुवन सार ।

*   *   *

कविता संक्रान्तिकाल की

गांगेय नरोत्तम शास्त्री

(सन् 1900 ई॰ - 1955 ई॰ - जम्मू)

कविता अंश

1.

भृकुटी बङ्क जब यह होती है
'चंदन' भी तब गरमाते
नीतिं चक्र जब चले हमारा
परम चतुर भी चकराते

2.

हम रोते जब रोते जड़ भी
हम हँसते, तब जग हंसता
प्रेम भरी जब 'यह दृग' होती
जगत प्रेम रस में बहता

तुलसी दल

हरित हरित पन्नों के दल-सम !
बुध तारा सी छवि के धाम !
मोर पंख से मंजुल मृदुतर !
लघु अंबिया-ललित ललाम
हिय हारी सौरभ के स्थान
हे तुलसी दल ! सिर आँखों पर
रहो ! सदा अगणित गुण गान !!

* * *

पीताम्बर 'पारखी'

(सन् 1904 ई॰ - 1998 ई॰ - जम्मू)

संध्या का यात्री

अभी अभी दोपहरी ही थी
लाल किरण थी दूर कहीं
पर ये पीड़ाएं मिल कर
संध्या को निकट बुला लायीं

★ ★ ★

सरक रहा है अस्ताचल को
अतिरथ का रथ धीरे - धीरे
पहुंच रहा है अन्तरिक्ष को
मेरा सामां धीरे - धीरे

★ ★ ★

कुम्हलाता है आनन ऐसे
चन्दा जैसे धीरे - धीरे,
उतर रहा है यौवन का मद
तूफां जैसे धीरे - धीरे

★ ★ ★

स्पन्दन - स्फुरण झगड़ बैठे हैं
कम्पन उतरा धीरे-धीरे
उतर रही है धूमिल छाया
इन नयओं में धीरे-धीरे

★ ★ ★

सीताएं भरती जाती हैं
मस्तुलिङ्ग की धीरे-धीरे
भुला रहा हूं गाथाएं सब
गत अतीत की धीरे-धीरे

★ ★ ★

जब कशेरूका घिस जाते हैं
मेरू - दण्ड के धीरे-धीरे
सहलाती है मस्तक निंदिया-
क्षुधा, हृदय को धीरे-धीरे

* * *

अंग अंक झुलसा जाता है
दृष्ट - कूट - सा धीरे-धीरे
यह असाध्य रोगों का मंदिर
ढहता जाता धीरे-धीरे

* * *

लाल लाल संध्या आंचल के
ओझल होता धीरे-धीरे
वरद - 'सुधा' की विछुरन - गाथा
गाता कोई धीरे-धीरे

* * *

कवि-रवि -रथ वढ़ता जाता है
हों संवर्तक नीले-पीले
लाल गुलाबी संध्या - तट पर
पहुंच रहा मैं धीरे-धीरे

* * *

बी॰ डी॰ हंस

(सन् 1905 ई॰ - 1978 ई॰)

युद्ध

भीम ने स्वीकार करते
यह कहा
सत्य से !
घनश्याम से !!
"मानता हूं संधि का प्रस्ताव,
पर
विनय करता हूं कि आगे जोड़ दो ।
धर्म क्षत्री का -
धरा का
क्यों कि
क्षत्री कौम है - और
धर्म का प्रतीक है !
सहन करना पाप है!
अपराध है !!
कौम से करना बगावत,
भाई हो !
बन्धु हो !!
सगा सम्बन्धी हो,
भीम !
देगा दण्ड उसको
जो बगावत कर रहा हो कौम से
मानता हूं - संधि का प्रस्ताव रखना
धर्म है
क्षत्री का - जो
शक्ति का आगार है
कुचल देने के लिए
विद्रोह को, और
उसके रहबरों के खून को ।

॰ श्री बी॰ डी॰ हंस द्वारा रचित 'भीम' नामक

खण्ड-काव्य के 'युद्ध' शीर्षक नामक प्रथम भाग से उद्‌त कुछ पंक्तियां ।

राम ने भी संधि का प्रस्ताव भेजा था
मगर
कर न पाया था उसे स्वीकार रावण
क्योंकि
वह, यह जानता था --
कौम उठती है धरा पर
युद्ध का पाकर इशारा ।
राम धर्म था !
सत्य था ।।
और
कौम का प्रतीक था !!!
जानता था धर्म --
क्षत्री का !
धरा का !!
मानता था
युद्ध का होना जरूरी
जब दनुज की यातन से
सत्य रोता हो धरा पर ।
ज्ञान का आगार रावण
जानता था
धर्म मानव का !
धरा का !
द्वैत और अद्वैत का !
ज्ञान ओर विज्ञान का !!
वह महा पंडित था धरा पर !
था नहीं अनजान राघव !
था नहीं अनजान रावण !
जानते थे
सत्य की गति अहिंसा है !
सत्य का पथ अहिंसा है !!

★ ★ ★

सत्यवती मल्लिक

(सन् 1906 ई० -? - कश्मीर)

जाने दो ! मुझे जाने दो
जब भी दूर, अति दूर चली जाती हूं
एकान्त, शून्य की खोज में
ढूंढता फिरता न जाने क्या
मेरा अस्थिर, विकल मन
विश्व के सब बन्धनों को काट कर
मानो, अपने से ही नाता तोड़कर !
और जब मेरे साथी पुकारने लगते हैं
विह्वल, व्याकुल होकर --
'लौट आओ, घर आओ,
बढ़ती चली जाती हूं आगे-आगे--
अधीर-उन्मत्त सी
परवाह नहीं करती - उनके -
बुलाने की, उनके उदास मुखड़ों की
आज सब छोड़ - छाड़ कर
जाने दो, जाने दो, मुझे जाने दो ।
अन्तहीन, ज्योति झिलमिला उठती है
हिम - कणों पर छा जाता है
अनन्त शान्ति का साम्राज्य !
फुंक जाते हैं स्निग्ध मेघ
निर्जन, नीरव सन्ध्या
और मेरा शून्य, स्तब्ध चित !
और क्रमशः मधुर मूर्तियां साकार हो उठती हैं
गूंज उठते हैं उनके मधुमय बोल
मुखर हो उठते हैं स्नेह के क्षण
और मेरा प्यासा मन

पुकारने लगता है -- "रूको ! रूको!!"
धन्य हो वह पुण्य-घड़ी
मंगलमय हो वह जागरण
रोमांचित हो उठे बार बार मेरा
रिक्त हृदय -
शत-शत स्मृतियों से भर उठें
मेरी वीणा के सभी राग,
मेरे प्राणों में झनझनाती रहें
आश्रय पाती रहें
उनकी छलछलाती --
निर्निमेष आंखे !

* * *

विजय सुमन

(सन् 1906 ई० - 1976 ई० - जम्मू)

दर्दीली किरणें

कोई तो मन बहला जाए !
वायु के रोते भकोंकों से
मैं अपना दर्द सुना बैठा,
जीवन की निधियां भंभा के
अंको में खेल लुटा बैठा,
उर के रिसते इन छालों को, कोई तो आ सहला जा
कोई तो मन बहला जाए ।
मेरी सपनों की माला के
मन के मनके ही टूट गए,
जिन से मन को छल लेता मैं
वह नयन खिलौने फूट गए,
आंखों की अविरल धारा से, कोई तो आ नहला जाए ।
कोई तो मन बहला जाए !
भूली राहों की याद जमी
प्राणों पर मेरे छातीं हैं,
विरह के गीतों की कड़ियाँ
दर्दों के स्वर से गाती है,
आशा की जलती होली में, कोई तो फाग मना जाए ।
कोई तो मन बहला जाए !

* * *

दुर्गाप्रसाद काचरू

(सन् 1908 ई॰ - 1956 ई॰ - कश्मीर)

प्रकृति का साक्षात विनय
दूर गीत की सुमधुर लय
शीतलता का वर संचय
दीन कीच का भाग्योदय
संस्कृति का रसपूत हृदय

* * *

लाल लाल फूल हों
आम्रों की मंजरी
बेलों के झुरमुट में
घूमती हो परी ।
दर्शकों के प्यासे राग
कोई बजाये बांसुरी
प्यास हो हरी हरी
टहलती हो सुन्दरी

* * *

तवी नदी पर कविता ----

इस ग्रीष्म देश की प्रेम कहानी
कह कह गुजरी तेरी जवानी
कितना बह गया तब से पानी
कितनी मनोहर तेरी रानी।
तवी तू कुछ कर हमसे बात
रात कैसे बीती हुआ कैसे प्रात
कौन कौन कहां था तुम्हारे साथ
कितनों के लिए लाई है सौगात ।

* * *

पुरूषार्थवती

(सन् 1911 ई० - 1930 ई० - कश्मीर)

लक्ष्यहीन राही

सांझ हुई अब लौट चले हैं
पक्षी गण मतवाले,
अरूण-दीप्त पश्चिम ने मद के
छलका डाले प्याले ।

बिखर चुकी हैं पूर्व-प्रान्त में
आशाओं की लड़ियां,
किन्तु निहित हैं मुग्ध उसी में
वे सोने की घड़ियां ।

विलय प्राय हो गये व्यक्त भी
इस निस्तब्ध निशा में,
एक तुम्हीं बस चले जा रहे
उस अस्पष्ट दिशा में ।

उठती हैं चंचल अतीत --
स्मृतियां रह रह कर मन में,
हंसना या रोना न सुनेगा
कोई निर्जन बन में ।

उस अदृष्ट की आशा में
कितनी रातें बीती हैं,
इच्छा और प्रतीक्षा, मिट कर
भी हारी जीती हैं ।

बुझा न सकतीं अश्रुकण से
लिपट-लिपट कर आहें,
धधक रही हैं सीमा पर वे
"निष्ठुर दीन" चितायें ।

व्याकुल पीड़ा कांप-कांप कर
सहम रहीं है अपने में,
भुला सकेगी भटक-भटक कर
निर्मम ममता सपने में ।

राही ! छोड़ सकोगे कैसे ?
आखिर फिर भी चलना,
कठिन लौटना है उतना ही
जितना आगे बढ़ना ।

★ ★ ★

बंसी लाल सूरी

(6 जनवरी, 1913 - 14 सितम्बर, 1970 - जम्मू)

यथार्थ नेत्र

कितनी ही बार
रात्री के समय
मेरे देव,
जब मुझे
तुम्हारे दरबार में
प्रस्तुत होने में
देर हो जाती है
तो तुम्हारा पुजारी,
मेरे खड़े खड़े ही
मन्दिर के किवाड़
बन्द कर देता है
किन्तु, फिर भी,
मन्दिर के यह किवाड़
मेरे और तुम्हारे मध्य
रोक नहीं बन पाते ।
मेरे
यह सूक्ष्म परञ्च तीक्ष्ण
गृध्र-नेत्र
तुमको
द्वार-पटों के बीच से भी,
अविरल,
प्रत्यक्ष देखते हैं
मित्र लोग
मुझ पर हंसते हैं

कि मैं तो
अपने प्रेम पात्र को
जड़ पटों से भी
देख लेता हूँ;
क्या मेरे जड़ देव भी
मुझ पर दृष्टिपात
कर पाते हैं?
मेरे यह भोले सखा
क्या जानें
कि मूर्ति के
यह जड़-चक्षु ही
मेरी ओर निहारने के
मेरे आरध्य देव के
यथार्थ नेत्र हैं ।

*   *   *

जयदेव बड़ू

(सन् 1913 ई० - 1947 ई० - पुरमण्डल, जम्मू)

प्राणि मात्र के प्राण मन भूषण वसुधा के
वेदो दधि के मीन रसिक संगीत सुधा के
माया पति होते न छू सकी जिनको माया
दीन दुखी खाली न गया जो सन्मुख आया
मत मतान्तरों के भेद जिनको न सुहाते
गीत एक सर्वात्मभाव का जो हैं गाते
जिनका जीवन लक्ष्य जगत अज्ञान मिटाना
वेद पुस्तकें वितरण कर संसार जगाना
मद न मोह न कुभाव जहां पर रहने पावे
क्यों न मदन मोहन मन मोहन उस घर आवें,
ठहर सकी उस समय कहीं जग मोहन माया
बनकर जब सर्वेश स्वयं जगमोहन आया

* * *

रामनाथ शास्त्री

(सन् 1914 ई० - जम्मू)

चित्र

अंगुली ने कहा - मेरा करतब,
औ' हाथ हंसा - इसका करतब !
बांह झूम गई, इठलाती हुई,
'ब्रश' मौन रहा, रंग मुसकाए ।
मन चंचल सोच में डूबा था,
मुझ को यह जादू हुआ कैसे ?
सुध-बुध अपनी बिसरा बैठा
तन्मयता ने यह चित्र जना !!
आंखों की पुतली विस्मित थी,
जिसने इस चित्र को पकड़ा था ।
वह बात कहीं मन से उसने,
मन ने आगे बाहों से कहा ।
हाथों ने सुना,
दो-तीन अंगुलियां तत्पर थीं
ब्रश उठा लिया,
रंगों का खेल हुआ जारी,
और चित्र लगा क्रमशः बनने ।
क्या आंख के पीछे भी कोई,
था छिपा हुआ प्रेरक मौनी
हां, हां, यह लेख उसी का था,
वह था जीवन का अंगारा !!

* * *

सम्पर्क :- 35-कर्ण नगर, जम्मू

शकुन्तला सेठ

(सन् 1914 ई० - जम्मू)

(जितमल बाबा)

(कर्मठ किसान)

आओ बच्चो तुम्हें सुनायें, गाथा इक बलिदान की ।
जिस के घोर घोष से टूटी, निद्रा सुप्त किसान की ।
आओ बच्चो........

जितमल बाबा सच्चा मानव, घार गांव में रहता था ।
वह धरती का कर्मठ कर्षक, दीन दुखी का दाता था।
धर्म ध्यान उसे प्यारे थे, ईश्वर के गुण गाता था ।
बेटी बुआ भोली, भाली, सच्ची ओर महान् थी ।
आओ बच्चो........

रिश्तेदारों ने मिल उस से पूर्वजों की छीनी भूमि ।
हल अरू बैल व ईश कृपा ही, सारी थी उस की पूंजी ।
बेटी के संग निकल पड़ा वह, छोड़ा अपने घर को भी ।
आ जम्मू में वीर सिंह से, थोड़ी धरती मांग ली ।
आओ बच्चो........

सामेचक्क की बंजर भू में, बीज गेहूं का बो दिया ।
रात दिवस श्रम कर बाबे ने, खून पसीना एक किया ।
खुश हो रिमझिम बरस इन्द्र ने, मेहनत का फल दे दिया ।
पर उस के श्रम पर थीं आखें, लगी रहीं शैतान की ।
आओ बच्चो........

जमींदार उधर से गुजरा, देखा सोना खेतों में ।
सारी कनक हज़म करने को, था ललचाया वह मन में ।
पास बुला बाबा से बोला, तूने अन्न चुराया है ।
चतुराई तेरी सब हम ने, एक नज़र में जान ली ।
आओ बच्चो........

क्रुद्ध हुआ वह वीर तपस्वी, शपथ लिये भूमि मां की ।
कहा "नहीं कम एक भी दाना, पूरी है तेरी खेती ।
अन्न देख तू भरमाया है, तेरी बुद्धि भ्रष्ट हुई ।
तेरे मन में पाप बसा है, भूल दया भगवान् की"।
आओ बच्चो........

जबरन अन्न लगे थे लेने, जमींदार के सेवक आ ।
बाबा उछल बढ़ा आगे को, ढेर अन्न के ऊपर जा ।
"रक्त पान कर खाना रोटी, नहीं तुझे भय ईश्वर का ।
धनी घमण्डी भूल गया तू, धर्म, ज्ञान, भगवान् भी"
आओ बच्चो........

छुरा घोंप छाती में बाबा, गिरा अन्न के ऊपर था ।
हाहाकार हुआ सृष्टि में, जुल्म सितम भू से उखड़ा ।
रहा देखता इकटक मैहत्ता, कँपित वह भयभीत हुआ ।
मानवता सच्चाई जीती, हार झूठ अभिमान की ।
आओ बच्चो........

बुआ को जब मिला संदेशा, दुख से हिरदय अकुलाया ।
भागी खेतों में वह आई, मृत था बापू को पाया ।
उसने भी फिर सच्चाई हित, कर निश्चय बलिदान का -
चिता बना जली बापू संग, बेटी कृषक महान् की ।
आओ बच्चो........

कार्तिक पूनम आज तलक है, स्मारिका बुआ बाबा की ।
लाखों लोग वहां जातें हैं, गाथाएँ गाते उनकी ।
यादों में लगते हैं मेले, ऐसे वीर शहीदों की ।
मेला झिड़ी है याद दिलाता, त्याग और बलिदान की ।
आओ बच्चो........

* * *

सम्पर्क :- 125, कूचा भोलानाथ,
अप्पर बाजार, जम्मू

दीना नाथ नादिम

(सन् 1916 ई॰ - 1988 ई॰ - कश्मीर)

कलिंग से राजघाट तक*

यह देखो रात हो गई
प्रकृति लाल रक्त पात की रूमाल
मुख पै डाल के निढाल सो गई
थिरक थिरक के बिजलियों ने
आंधियों ने
भूमि कंप ने कलिंग के ललाट पर
कथा लिखी
विजय की हार की कथा

* * *

वह देखो राजघाट पर चमकती दीप की शिखा
वह देखो
अपने रक्त से किसी महान व्यक्ति ने
पताका की जड़ों को सींचकर रखा
वह देखो रामधुन के मर्म स्वर हिल्लोरे
खा रहे

* * *

राम धुन के मर्म स्वर बढ़े हैं,
बढ़ रहे हैं ।

---

* ज्योति, श्रीनगर, 1951 ई॰

दीनू भाई 'पन्त'

(सन् 1917 ई॰ - 23 मार्च, 1992 ई॰ - जम्मू)

जुगनू

देख जुगनू, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

रात मावस की, घिरी घनघोर सांवन की घटाएं,
प्रलय नागिन सी छटी झंझा, कुपित शिव की जटाएं
जड़-सचेतन सब तिमिर में आप अपना खो चुके हैं,
चांद तारे तक अंधेरे के कफन में सो चुके हैं
तू अकिंचन ही सही, पर कसकता तम के हृदय में,
हे विभासुत, रोशनी का नाम लज्जित कर न जाना !

देख जुगनू, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

दिल में हिम्मत हो तो विपदाओं के घेरे कुछ नहीं
दिल ही कायर हो तो सोने के सवेरे कुछ नहीं
चाह आज़ादी की है तो मौत का डर कुछ नहीं
एक चिनगारी भी है तो तम का सागर कुछ नहीं
तेरे दम से अब भी जीवित है सवेरे की उम्मीद
एक तू आशा-किरण है घुट-घुटा कर मर न जाना !

देख जुगनू, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना !

तेरा लघु जीवन चुनौती है अंधेरे के लिए
मौत के मुख में भी जल सकते हैं जीवन के दिये
इस प्रलय में भी उदय की स्वर्ण आशा तू तो है
एक जलते कवि-हृदय की मौन भाषा तू तो है
कुछ भी हो संघर्ष तेरा अमर, अटल, अपार है
बेबसी के आंसुओं सा थरथरा कर झर न जाना !

देख जुगनू, डर न जाना
तम सघनतम कर न जाना

* * * (अगस्त, 1942)

शंकर शर्मा 'पिपासु'

(सन् 1917 ई० - 1978 ई० - जम्मू)

कब आती है याद किसी की ?

शान्त पथिक सा व्यथित हुआ सा उलझे मन को सुलझाने को,
धीरे से अंगड़ाई लेकर, बैठूं बन में सुस्ताने को,
कल कल रव से, नूतन ढव से, निर्झर गान सुनाता है जब,
तब मुझ को कल-कण्ठ-शंख की धुन देती आह्लाद किसी की,
कब आती है याद किसी की ?

उस निर्झर में ही प्रसन्नचित्त इठलाती जब मीन निरखता,
अथवा उत्पल पवन - हिंडोले डोले जो लख लोल सिहरता,
सोचा करता हूं उस पल में विस्फारित दृग मौन खड़ा ही,
नयन नहीं क्या उस शशि मुख के जो तोड़ें मर्याद किसी की,
कब आती है याद किसी की ?

कभी फेर ग्रीवा को अपनी इधर -उधन सुलझाता पट-पर
धीरे -धीरे नाप रहा मग वह मराल उस निर्झर तट पर,
झूम झूम झुक-झुक कर भू पर कभी बीनता है मुक्तागण,
देखा करता जब उस गति को गति देती उन्माद किसी की,
कब आती है याद किसी की ?

बैठे आती निर्भर-तट पर काली रजनी लेकर चादर,
जड़ित जुही के फूल नहीं तारक जिस पर उज्याले मनहर,
निर्निमेष निरखा करता चल जल में वह झिलमिल परछाई,
तो सचमुच ही मुझे विफलता करती है बरबाद किसी की
कब आती है याद किसी की ?

प्रातः पल्लव दल परजल कण जो बिखरे थे वे सुधरसुधर,
देखे भीगे कोमल उज्जवल मुक्तागण से सतत मनोहर,
आता जी में, बीन बनाऊं माला, हाथ लगाता पर जब,
चू जाते वे दृग जल कण से जो प्रतिमा अवसाद किसी की,
कब आती है याद किसी की ?

अरूण अरूण सी लख अरूणाई मुझ को होता ज्ञात वही है,
देती संदेशा फूलों को चूम चूम मधुवात वही है,
जग में सौरभ मिस प्रसून प्रसरित करते तो बात वही है,
वही ! उसी का प्रेम !! प्रेम जो, सुनता है फरियाद किसी की !!!

कब आती है याद किसी की ?

* * *

पृथ्वी नाथ पुष्प

(सन् 1917 ई॰ - 1998 ई॰ - कश्मीर)

नवजीवन

वसुधा के मुरझाए मुंह पर
माधव नव आभा ले आया,
पतझर से पथराई आंखों में
सोया चेतन अंगड़ाया ।

खलिहानों की सूखी ऐंठी
चमड़ी की उलझी झुर्रियों में,
नवजीवन की हरियाली ने
यौवन को साकार दिखाया ।

जाड़े की कर्कश जड़ता से
पीडित शोषित पौधों के,
हिय में वासन्ती मनुहारों ने
जीने का अनुराग जगाया ।

कुसमों की मृदु मुस्कानों ने
मानव के बहरे कानों में
नवयुग की नव ललकारों का
नीरव नूतन सोज़ सुनाया ।

चमकीली धूपों की छव से
भीनी फुर्तीली पवनें भी,
जागृति का नर्तन करती हैं-
कण-कण में नव जीवन आया ।

पर ठिठुरे श्रमियों के भी
जीवन को मधु सरसरएगा क्या,
शोषण के भीषण जाड़े से
घरती ने छुटकारा पाया ।

* * *

(फरवरी, 1943)

रामकृष्ण शास्त्री 'अव्यय'

(सन् 1918 ई० - 1994 ई० - जम्मू)

'श्री वैष्णों लीला कथा' के पहले विश्राम से पद्यांश :-

अजर अमर भारत की महिमा
जगजानी-पहचानी है ।
धर्म-धाम तीर्थों की गरिमा
मनमानी सन्मानी है।
पूरब-पश्चिम उत्तर दक्षिण
सभी ओर हैं पुण्य-प्रदेश ।
पूर्वोत्तर जम्मू-कश्मीर है
भारत का अंग विशेष ।
वीर धीर गंभीर सदा
यह धर्म प्राण कहलाता है ।
सदियों का इतिहास पुराना
विविध-वृत्त सुनवाता है ।
शक्ति पीठ वैष्णों माता का
डुग्गर में है प्रकट हुआ ।
राजस-तामस दोष मिटाकर
सत्वभाव निष्कपट हुआ ।
स्वयं सिद्ध शक्ति का सिद्धाश्रम
तन-मन का पावन है ।
इसकी पुण्य-कथाओं से
उज्वल होता जन-जीवन है ।
हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता
ऋषि मुनि भक्त सुनाते हैं ।

उसी भान्ति हरि भक्ति के
विविध रूप-गुण गाते हैं ।
इस डुग्गर के शक्तिपीठ की
गाथाओं का है विस्तार ।
जिसनें जैसा देखा और सुना
उसका कर दिया प्रचार ।
श्रद्धालु धर्मालु सज्जन
भक्ति-भवना के अनुसार ।
अर्चन-वंदन-भजन, भेंट
अर्पण से होते सुखी अपार ।
स्वल्प-काल पहले भी भक्तों से
भरता था श्री-दरबार।
अब अपने स्वाधीन हिन्द में
प्रगतिशील है जन परिवार।
बारह मास आते जाते
देश-विदेशी लोग सभी।
यथा काम दर्शन सुख हेतु
ठहरे रहते कभी कभी।
नवयुग के इस नए भेस में
परिवर्तन भी हुआ यहाँ।
सुप्रबन्ध की बदल गई है,
पूर्व-व्यवस्था जहाँ तहाँ।

★ ★ ★

श्रीमति शान्ति गुप्ता

(सन् 1919 ई॰ - जम्मू)

मधुर कितना था वह संसार !

मधुर कितना था वह संसार!
नहीं पीड़ा का जिसमें लेश,
अपरिचित थी तुमसे हे देव !
न पाया था नीरव संदेश !

कहां से, अनजाने चुपचाप
चले आए अन्तर-पट खोल,
लिए सब सुख श्रृंगार समेट
वेदन ही बदले में तोल ?

हाय ! यह डर की व्यथा अपार,
मिला वह सोने - सा संसार !

नयन बेसुध स्वप्नों के भार
बरसते थे मादक उल्लास,
न जानी थी यह स्नेह की रीति
न जानी थी क्या है चिर प्यास !

तुम्हीं ने निर्मम मेरे देव
दिया स्मृति का नूतन उपहार,
इसी से भरे मेघ सम नयन
सदा झरते आंसू की धार !

कभी देखेंगे नवल प्रभात
घिरी पावस की तम मय रात!

अरूण अधरों पर मधु मुस्कान
थिरक कर दिखलाती थी लास
प्रात की प्रथम किरण कर म्लान
पुण्य का करती थी उपहास

तुम्ही ने धोकर पहला रंग
आंक दी रेखा एक विषाद,
ढुलक कर बिखरा मधु तत्काल
रहा केवल कटु - सा अवसाद,

कहो कैसे ले पीड़ा मोल,
रखूं प्राणों की निधि अनमोल ?

* * *

गंगादत्त शास्त्री 'विनोद'

(सन् 1920 ई॰ - जम्मू)

जीवन की पतवार

तूफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।
आज बजी भीषण रण-भेरी,
हिम-गिरी पर घिर गई अंधेरी ।
धरती के कण कण में उमड़ी,
उथल पुथल की धार ।
तूफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।
उठा आ रहा चीन बवण्डर,
फटे जा रहे घरती अम्बर ।
डटी हमारी फौजें बन कर,
काल रूप साकार ।
तूफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।
जाग उठा भारत का जन गन,
मचल रहे हैं सब के तन मन ।
अभी बहाना होगा हम को,
जीवन का सब सार ।
तूफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।
आज वीरता का व्रत ले लो,
देश प्रेम की मदिरा पी लो ।
इस पुनीत कर्त्तव्य दिशा में,
तन-मन धन दो वार ।
तूफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।
अरे, मोह पैसे का छोड़ो,
भेद-भाव का बन्धन तोड़ो ।
अभी मृत्यु से प्रिय प्राणों का,
तुम कर दो अभिसार ।
तुफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।
कफन बांध लो सिर पर अपने,
भूलो जीवन के सुख -सपने ।
हंस-हंस कर करते जाओ,
तूफानों से प्यार ।
तूफानों की ओर बहा दो जीवन की पतवार ।

* * *

सम्पर्क :- 23, केसरी कुटीर, मौहल्ला पहाड़ीयां, जम्मू

दुर्गा दत्त शास्त्री

(सन 1920 ई० - 1995 ई० - जम्मू)

प्रतिशोध लेंगें

देश के स्वातन्त्र्य पर, यह चीन घन सा छा रहा है,
राक्षसी आतंक के बल, दन-दनाता जा रहा है ।
बज्र बन कर गिर पड़ो तुम, आततायी के दमन को,
प्रलय की हूँकार बोलो, बढ़ चलो इस के दफन को ।

बोल दो ऐसी तबाही जिससे ज़ालिम जान जाये,
भद्रता विधवा नहीं है आज दुनियां मान जाये ।
जुल्म की आंधी से डटकर जूझना है निपटना,
जंगली कानून लाठी भैंस का अब है बदलना ।

वाह रे उन्मत्त अन्धे गज़ब छल-बल दम्भ तेरा,
मित्रता की आड़ में कपटी कमीना बार तेरा ।
हम जुटे निर्माण हैं देश की बिगड़ी बनाने,
सब को अपना जानते हैं, नहीं कोई गैर माने ।

तूने सोचा भारती तो खुद-बखुद ही लड़ रहे हैं,
प्रान्त, भाषा, मत मतान्तर, नाम पर ये भिड़ रहे हैं।
बात कुछ-कुछ ठीक थी, थे उलझते आपस ही में हम,
अपने घर में कुछ भी हो, पर अन्य हित सब एक हैं हम ।

पर चलो अच्छा हुआ, यह घात तेरा फूट निकला,
तीर तेरी नीचता का विष बुझा था छूट निकला ।
सरलता जाती छली है,कुटिलता कुछ कुछ फली है,
सत्य है पर याद रखना, विजय अन्तिम ही भली है ।

संभलना बर्बर ! हमारे शौर्य की धारा बहेगी,
शान्ति में अब क्रान्ति की ज्वाला भयंकर जल उठेगी ।

तृप्ति-हित बलि-पंथियों की सुन रे हम आगे बढेंगें,
उन शहीदों के लहु की शपथ है प्रतिशोध लेंगे ।
हम तेरे खूनी इरादों की कबर अब खोद देंगे,
बन के तूफां नाव तेरी को डुबो कर ही रहेंगे ।

विजयिनी मां का मुकुट है यह हिमालय और रहेगा,
इस से उलझा है तो बस, तू मौत का सामां करेगा ।

* * *

सन् 1962 ई०

सुशीला तुली (सुपर्णा यति)

(12, नवंबर 1923 - जम्मू)

नवीन

नवीन रक्त चाहिये, नवीन भक्त चाहिये ।
नवीन देश के लिये नवीन प्राण चाहिये ।।

दुःख दर्द से भरी रही न वे कहानियाँ,
मौत जिस का नाम है रही न वे गुलामियां ।
बीत रात है गई प्रभात के प्रकाश में,
स्वतन्त्र देश की ध्वजा उठा रही जवानियां ।
आज नव्य भाव से करो सप्रेम बन्दना,
किन्तु बन्दनार्थ आज नव्य वीण चाहिये ।
नवीन वीर के लिये नवीन गान चाहिये ।।

धूप दीप हो सभी, नवीन सब सामान हो,
नवीन तुम नवीन हम नवीन आत्म-गान हो
कब किया सिंगार है पुराण पुष्प ने कभी,
नई नई बहार का जो कि प्राण वान हो ।
गिर गये हैं फूल वे, ये सुगन्ध हीन जो,
नव बसन्त के लिये नवीन हास चाहिये ।
नवीन हास के लिये नया विकास चाहिये ।।

भूत के प्रदीप की शिखा जो टिमटिमा रही,
बुझी पड़ी है देख लो नया प्रभात ला रही ।
कब रूका तुफान है अशक्त से कभी,
समुद्र में तरंग भंग आज सांस ला रही ।
धार बीच जब चलो न नाव याद तब करो,
धार पार के लिये नया प्रयाण चाहिये ।।

नीर नेक वह गये मगर न धार यह रूकी,
मृत्यु शीष पर खड़ी मगर न जिन्दगी झुकी ।
आ गया है यह वसन्त चल दिया है यह वसन्त,
बीत हम रहे हैं नित्य पर न कामना झुकी ।
युग कभी नहीं रूका युग कभी नहीं झुका,
युग प्रवाह के लिये नवीन धार चाहिये ।।
नवीन धार के लिये नया प्रवाह चाहिये ।।

ईंट नींव की बने कौन सा वह नौजवान,
गुम्बदों को देख मत ध्यान नींव का करें ।
खाक में जो मिल सके कौन सा वह नौजवान,
और खाक पर चलें देश के नये चरण ।
पंथ बन सके कि जो वही महान चाहिये ।
नवीन देश के नवीन प्राण चाहिये ।।

★ ★ ★

सम्पर्क :- आर्य समाज मन्दिर, रिहाड़ी, जम्मू

चूनीलाल चिब

(सन् 1925 इ० - 1992 ई० - जम्मू)

[कवि चूनीलाल चिब की दूसरी कृति 'गज़नी - विजय' से प्रसिद्ध लोक देवता वीर शिरोमणि कालीवीर से संबंधित कुछ पद्यांश]

जानकारी अलौकिक वीर की

था सतिसर नगर धरापर सुन्दर, प्राचीन इतिहास बताते हैं ।
घरती का स्वर्ग कहलाया है, सभी जानकार फरमाते हैं ।।
डल के दायें किनारे पर, प्राचीन समय के खण्डर हैं ।
कभी सुन्दर भवन सुशोभित थे, वहीं जीरण शीरण मन्दिर हैं ।।
नाग वंशीय उच्च्व घराने में, अवतरित हुए थे वीर महान ।
थी मातु कालिका सति साधवी, पिता महान अतिधीर सुजान ।।
इसवी सन् नौ सौ सतानवें, नवरात्रों में रविवार को ।
था चैत मास का शुक्ल पक्ष, और जन्म हुआ दोपहर को ।।
तव नामकरण संस्कार हुआ, श्री वीर भद्र था नाम पड़ा ।
अल्पायु में ही नाग तनय, मेधावी था गुणवान बड़ा ।।
पढ़ने लिखने के साथ साथ, शस्त्र विद्या में भी दक्ष था ।
इसी पांच वर्ष के बालक ने, सो गज तक वेधा लक्ष था ।।
हुआ घुड़सवारी का माहिर भी, सात वर्ष की आयु में ।।
जब अश्व तेज दौड़ाता था, गति आ जाती थी वायु में ।
दस वर्ष का यही बालक, पचासों से भिड़ जाता था ।
देह पै आंच न आती थी, जौहर करतव खूब दिखता था ।।
था चीर दिया मुख नाहर का, वारामूला के जंगल में ।
शेर शेरनी मारे थे, निहत्थे ही इस दंगल में ।।
तब तेरह वर्ष की आयु थी, माता ने बुरा मनाया था।
वन जीवों की शान्ति में, वीर ने खलल पहुंचाया था ।।

मां काली के मंदिर में, क्षमा याचना करो वत्स ।
कहीं उनके ही वाहन न हों, बोली मां, आइंदा डरो वत्स ।।
महान पिता ने मां काली को, उस दिन बहुत मनाया था ।
उसी की कृपा से वीरभद्र, बड़ा काम कर पाया था ।।
उसी रात स्वप्न में कलिका को, दे दर्शन कहा जगदम्बा ने ।
वीरभद्र अंश निर्दोष मिरा, ज्यों निर्मल जल है गंगा में ।।
बाल भी वीका नहीं होता, पीठ जिसकी पै हो हाथ मिरा ।
तुम मेरी ही प्रतिछाया हो, और वीर भद्र है दास मिरा ।।
निष्ठा और शुभ कर्मो से ही, तुझे पुत्र रत्न यह बख्शा है ।
मेरे सगुण रूप इस भारत की, इसी ने करनी रक्षा है।।
पुत्री, निर्भय औ निशंक रहा, नहीं बांधे कर्म निश्कामी को ।
मैं जिसकी सहायक होती हूं, उसे कभी न हानी हो ।
स्वछंद रखो इस बालक को, यही कालीवीर कहलायेगा ।
असम्भव भी सम्भव कर देगा, कई चमत्कार दिखलाये गा ।।

★ ★ ★

चन्द्रकान्त जोशी

(सन् 1928 ई॰ - 25 मार्च 1985 - जम्मू)

1857

पहले खून बहा करता है अमर शहीदों का
फिर ही दिन आता है दीवाली का, ईदों का !

सन्-सत्तावन में लिखी गई थी वही कहानी
बलिदानों के भेंट चढ़ा करती सदा जवानी
इक पागलपन था बाल-वृद्ध, युवकों में छाया
एक लक्ष्य पर मरे मिटे जनता राजा, रानी

जो बीज रक्त के बोये वह व्यर्थ नहीं जाते
उनके सिंचन से ही खिलता बाग उम्मीदों का !
पहले---------

हा! दूर फिरंगी को करने का काम बड़ा था
काली तोपों के सन्मुख छाती तान खड़ा था
यों गोलों की बौछार हुई गोली भी बरसी
पर ह्रदय, ह्रदय में भारत का अभिमान अड़ा था

हिन्दू मुस्लिम, मन्दिर-मस्जिद मिलकर एक हुए थे
बुरा हुआ पर पापी गद्दारों गीधों का ।
पहले.........

अनगिन देश-भक्त जिनका कोई नाम नहीं है
पता आज जिनका, ठौर, ठिकाना ग्राम नहीं है
बस एक लग्न थी विजय-पराजय से क्या मतलब
सत्य बात कि आज़ादी का कुछ दाम नहीं है

भूख प्यास भी सह ली जंगल जंगल घूमे
किन्तु प्यार से गले लगाया फांसी का झोंका
पहले..........

गोरे की नादिरशाही से हाहाकार मचा
लक्ष्मी ने 'चण्डी' का रूप धरा था ताप तचा
नाना, टोपि तांन्तिया, शाह बहादुर भी गरजे
मरण इक त्योहार हो गया, रण का रोष जगा

'बेड़ी काटो', 'कारा तोड़ो' का जनरव गूंजा
यह प्रण था सन् सत्तावन के कुल-वीरों का
पहले..........

यह कुर्बानी का लम्बा इतिहास सुहाता है
आजादी के बदले जीवन तुच्छ बताता है
आजादी का जो दीप जला जलने दो जी भर
इस आभा से भारत ज्योतित होता जाता है।

सदा सुरक्षित इसको अपने आंचल में रखना
इन दीपों की चमक-दमक है पर्व शहीदों का ।
पहले................

समय बदल जाता शब्दों के अर्थ बदल जाते
आज क्रान्ति कहते जो, थे गदर कभी कहलाते
जिनको दण्ड मिला वह सब पूजा के अधिकारी
इतिहास बदलता आजाद देश गौरव पाते

आजादी के इस प्रथम द्वंद्व के इस पुण्य दिवस पर
श्रद्धा के फूल लिये गाओ गीत शहीदों का !

पहले खून बहा करता है अमर शहीदों का
फिर ही दिन आता है दीवाली का ईदों का !

* * *

मनसाराम शर्मा 'चंचल'

(17 जनवरी, 1928 - कठुआ)

नयनों की भाषा

यह अजब है नयनों की भाषा ।
पलती है इनमें अभिलाषा
बिना कहे ये सब कुछ कहते ।
नहीं कभी ये निश्चल रहते ।
कभी झुके, कभी तिरछे होकर,
भरते जीवन में नव आशा ! यह अजब.....
नयन कभी जब निश्चल होते ।
गहन सोच में हैं तब खोते ।
मौन मौन सब कह जाते हैं,
आशा हो या हो निराशा । यह अजब......
कभी ये देते मौन निमन्त्रण।
कभी ये रखते आत्म नियन्त्रण ।
कभी विवशता दर्शाते हैं,
कभी दिखाते एक हताशा । यह अजब......
दुख हो तो ये रिमझिम बरसें ।
कभी विरह में बरबस तरसें ।
कभी हंसे औ, कभी अकुलाएं ,
कभी शतद्रु कभी विपाशा । यह अजब....
चंचल भी हैं करे शरारत ।
कभी मचाएं भारी गारत ।
आशय इन का अति गूढ़ है,
ये पल में तोला, पल में माशा ।
यह अजब है नयनों की भाषा ।

★ ★ ★

सम्पर्क :- वार्ड न० 9, कठुआ

श्यामदत्त पराग

(27 अप्रैल, 1928 - जम्मू)

सवारी सम्राट की

सजावट की जा रही है ।
राज मार्गों पर ।
संवारे सजाए जा रहे हैं,
नगरों के प्रवेश द्वार ।
नरकंकालों, अबोध शिशुओं के ।
कटे हुए सिरों ।
महिलाओं के उजाड़े गये सुहागों
खण्डित मंगल सूत्रों तथा,
भाइयों की रक्षा बन्धन से सुसज्जित
खण्डित कलाइयों से ।
किये जा रहे हैं छिड़काव,
विरोध की धूल को शान्त करने हेतू,
नन्ही आखों से अनवरत झरझरते
आंसुओं तथा रूधिर की धाराओं से ।
गुंजित हो रहे हैं ।
संगीत के स्वर,
सिसकियों तथा करूण विलाप की स्वर लहरियों से ।
टांगे जा रहे हैं।
शन्ति के प्रतीक ।
सफेद कबूतर मार-मार कर ।
तोरण द्वारों पर ।
पूछा भोले मन ने,
यह सब क्या है ?
किसके लिये इतना बड़ा आडम्बर ।
आयोजन ।

उत्तर दिया ।

चिल्लाहट भरे एक कर्कश स्वर ने ।

"अंधे हो क्या"?

दिखता नहीं है कुछ?

सवारी आ रही है,

समय के सम्राट की ।

हट जाओ ।

कहीं दिख गये तो कुचल दिये जाओगे ।

मक्खी मच्छर की भाँति मसल दिये जाओगे ।

*　　*　　*

सम्पर्क :- जी-8/24, आकाश भारती आवास,
इन्द्रप्रस्थ विस्तार, प॰प॰ गंज,
दिल्ली-92

यश शर्मा

(सन् 1929 ई० - जम्मू)

प्यार के आंसू भी होते हैं !

वही हमें ठुकरा देते हैं
जिनकी हम पूजा करते हैं
फिर भी मन की बात मान कर
उसी डगर पर हम चलते हैं
चांद निशा का हो जाता है, प्राण चकोरी के रोते हैं
प्यार के आसू भी होते हैं ।

कितने निष्ठुर हैं वे आली
कैसी निर्ममता है उनकी
फिर भी हम राह देख रहे हैं-
चिर सुन्दर की, चिर यौवन की
हम बैठे हैं दीप जलाए, वे सुख शय्या पर सोते हैं
प्यार के आंसू भी होते हैं !

रूप चांद की शीतल किरणें
यौवन, इक जलती ज्वाला है
इन दोनों का हास मधुर है
पर, मृत्यु देने वाला है
दीप-शिख मुस्काती रहती, परवाने जीवन खोते हैं
प्यार के आंसू भी होते हैं !

* * *

सम्पर्क :- 24-लास्ट मोड़, गांधी नगर, जम्मू

कविता वर्तमान की

सुभाष भारद्वाज
(15 दिसंबर 1929 - 16 अप्रैल, 1993)

कुछ तो सुन !

सुन रे, भिक्षुक !
अर्ध-नग्न !
मग्न झोंपड़ी के वासी !
भूखे नर !
यह तेरा सूखा तन,
घायल मन
टपक रहा है ।
अंग अंग से
धूल सना क्रन्दन;
रे ! शस्य - श्यामला
भारत-भू के
भूखे नन्दन !
त्रस्त, ध्वस्त
यों अस्त-व्यस्त अलमस्त
यह पग तेरे कमज़ोर
रूढियों की
गहरी दल-दल में गड़े हुए ।
करते रहते हो
अपने ही
मुरझाये-झुलसाये
मन में गुन गुन ।
ओ ! कुछ तो सुन !
मेरी भी सुन !
रे, गीता, सीता के अफसाने

लम्बे चौड़े वेद
उपनिषद् औ ब्राहाण,
ज्ञानी रचित
पुराणों के भण्डार,
ज्ञान आख्यानों के,
अन्नत के ज्ञाता
सन्त महन्तों के
मुख से झुक -झुक
सुनने वाले
कुछ तो सुन !
मेरी भी सुन !
मैं कवि हूं -
शायद इसी लिए
आतुर हूं तुझे सुनाने को
समझाने को
कि शायद
इसीलिए बेचैन
अपने उर के
दारूण दर्दीले चित्र
तुझे दिखलाने को ।
मुझे ज्ञात है -
तेरी मेरी जंजीर एक है,
पीर एक है,
तेरी मेरी
आखों में सावन एक
बरसता नीर एक है;
देख मेरे भी उर में-
घाव वही,
सहमे-सहमे भाव वही
रूठे मुरझाये चाव वही हैं

तेरी मेरी है
काल कोठरी एक
घिरी हम दोनों के चहुं-ओर
समुन्नत औ' दुर्गम
प्राचीर एक है ।
मैं कवि हूं,
लेकिन सूख गया जल
मधु-भावों के झरनों का;
मैं भूल गया हूं-
गति का यति का ध्यान
गीत की बुनने 'की विधि'
उपमाओं अनुप्रासों से
अनुप्राणित कर
चमकना उसके चरणों का;
मेरे मन का
रोमांस अभावों ने नोचा
नीलाम हो चुका है
मेरी मुस्कानों का ।
अब ज्योतिहीन
हो चुके नयन, असमर्थ
निरख नव-रूप
चौंक-चुंधियाने को;
नीरस, फीके
इन उपमेयों के लिये
जुटाना कठिन हो गया है
अभिनव उपमानों को ।
लेकिन, अब भी
कविता-प्रेमी
मिल जाते हैं कहीं कहीं
आग्रह करते हैं

रचना नई सुनाने का;
लेकिन, अब उन्हें
सुनाऊं क्या ?
मैं गाऊं क्या ?
जब गुमे हुए हैं भाव
अगाध अभावों में,
जब कटे हुए हैं पंख
मधुर अरमानों के,
जब उर ही
मरघट के समान
नीरव, नीरस औ' रिक्त,
पड़ा अतृप्त
अधर पर लाऊं क्या ?
मैं भूल गया हूं
बात जाम की
साकी की
अंटी में दाम नहीं
महफिल में आऊं क्या ?
मैं गाऊं क्या ?
कि अब तो
लौट आ गई है फिर से
कविता मेरी --
अलबेले राजकुमारों की
राजसी महफिलों से,
ऊंचे दरबारों से ।
कि अब यह मुक्त हो गई
युगों युगों के घिसे पिटे लय-ताल,
छन्द के बन्धन से ।
कि नाता तोड़ चुकी
स्वर्गीय काल्पनिक नन्दन,

चांद, सितारों से ।
कि आज चेताया है
फिर से इसको
तूने अपने
अगणित अश्रु-मुक्ताओं,
शीतल निःश्वासों,
इन दारूण हा हा कारों से ।
पहन लिया
दायित्व आज मैंने अपना
देखा करते
हर रात अन्धेरी कुटिया में
तुम जिसे,
आज सुन्दर सपना
वह तेरा
कर के सत्य मुझे दिखलाना है ।
बस हुआ
आज से मैं तेरा
मेरे मुँह का
हर बोल
धधकती एक ज्वाल
कि मेरी कविता का
हर एक चरण विस्फोट,
कि लोहा लेने को
आकुल मेरी हर सांस,
युगों से चली आ रही
इन भीषण पतझारों से ।

* * *

कृष्णा गुप्ता

(5 नवंबर, 1929 - जम्मू)

शैशव

शैशव कुटियों में, चिथड़ों में भी
कितना मन भावन,
खुशियों की दौलत भर देता
निर्धन मां का दामन ।
प्यारा सा शिशु मचल उठा
घुटनों घुटनों चलने को,
सड़क समझ कर घर का आंगन
अपनी क्रीड़ा करने को ।
मां की आंखों में कितना
आह्लाद छलकता दिखता है,
मानो लाखों का दौलत धन
उसके आगे बिखरा है ।
घुटनों के हाथों के बल
शिशु ऐसे डग भरता है,
जैसे वामन रूप में विष्णु
बलि राजा को छलता है ।
भर किलकारी मां के पीछे
आतुर आतुर कदम लघु,
सोच रहा है जैसे उसने
बिखरा डाला बहुत मधु ।
नव जीवन की नई जोत से
छलक रहे दो नयन विमल
मां उनमें ऐसे लखती है
मानो खिले हों नील कमल ।
वात्सल्य के इन लहमों में

निर्धनता है दूर भगी,
उसे तो अपने भीतर लगती
मां जसुदा की ज्योति जगी ।
लगता है हर नयी आंख में
कृष्ण झांकते लगते हैं,
इसीलिए शिशु झट धरती को
प्रीत बांटने लगते हें ।
मां की ममता अपने शिशु में
रूप आलौकिक पा लेती,
पुत्र रूप में अपूर्व सुखों की
दुनिया एक जगा लेती ।
मां अपनी सृजनात्मक क्षमता
देख देख पुलकित होती,
हाथ काम में आंख शिशु पर
विलग नहीं एक पल होती ।
हर नव रूप में आने वाली
खुलती हैं जो भी आंखें,
सिम सिम सी खुल जाती उन संग
जादू की कितनी पांखें ।
क्या जाने इस नये रूप में
कोई विभूति आई हो,
घरती इसके कोमल पग की
थिरकन से ललचाई हो ।
जो भी है महलों का वैभव
फीका है इस रून झुन बिन,
नंदन कानन सा लगता है
शिशु से निर्धन का आंगन ।

* * *

सम्पर्क :- 26 बी / बी- गांधीनगर, जम्मू-180004

वेदपाल दीप

(सन् 1929 ई० - 4 फरवरी 1995 - जम्मू)

गीत

उठो उठो ऐ वीर जवानों !
रक्त मांगता देश !
न कोई मुस्लिम न हिन्दू,
हम हैं सब हिन्दोस्तानी ।
बहुभाषी जन गण की अब तो,
एक हो चुकी वाणी ।
इक दूजे का भेद मिटा है
मिटे हैं सारे द्वेष ।
उठो उठो ऐ वीर जवानो,
रक्त मांगता देश ।
अपनी सरहदों की खातिर,
प्राण न्यौछावर कर देंगे ।
एक सीस क्या सीस कटा कर,
मां की झोली भर देंगे ।
जान हथेली पर रख कर,
तुम मां का हर लो क्लेश ।
उठो उठो ऐं वीर जवानों,
रक्त मांगता देश !
कसम तुम्हें है भगत सिंह की,
कसम है रानी झांसी की ।
कसम है उनकी जिन्हों ने,
हंसकर, चूमी रस्सी फाँसी की ।
काम शहीदों का अब पूरा,
कर दो जो है शेष ।
उठो उठो ऐ वीर जवानों ।
रक्त मांगता देश !

* * *

मधुकर

(28 नवम्बर 1930 - 24 अगस्त 2000 - जम्मू)

गीत

जागो रे, जागो रे,
जागो वीर भारती ।
जननी पुकारती,
जागो रे, जागो वीर भारती ।।
जो समय पे काम न दे,
आन वह किस काम की ।
जो अरि से भिड़ न जाए,
शान वह किस काम की ।
प्राण-दीप बाल के,
ऊतारो मां की आरती,
जागो रे, जागो रे,
जागो वीर भारती,
जननी पुकारती ।
जागो रे, जागो वीर भारती ।।
हिम-गिरी के भाल पर,
क्यो किसी का पांव हो ।
अपने देश का ऊजाड़,
एक भी न गांव हो !
सीमाएं देश की हैं
पथ तेरा निहारती ।
जागो रे, जागो रे,
जागो वीर भारती,
जननी पुकारती ।
जागो रे, जागो वीर भारती ।।

* * *

सत्यपाल श्रीवत्स

(12 जून, 1932 - सुराड़ी, कठुआ)

दो सायों के बीच

मैं
अपने आपको
सदा दो सायों के बीच घिरा हुआ पाता हूं,
अपना साया
मौत का साया ।
मैं नाज करता हूं अपने साये पर
कि यह मेरा हमेशा साथ देता रहेगा,
क्यों कि ...
अपने आगे-पीछे,
ऊपर-नीचे,
दुख में, सुख में
मैं निरन्तर इसी से घिरा रहता हूं ।
पर
फिर भी
न जाने क्यों फिर भी प्रतीत होता है कभी -कभी
कि -
सब से अधिक खतरा मुझे इसी से है ।
क्यों कि
लगता है कि यह एक दिन मेरा साथ छोड़ देगा !
जबकि
मौत का साया
अपनी उपस्थिति
का मुझे कभी एहसास भी नहीं होने देता ।
वह पास रह कर भी

मुझसे अजनबी सा बना रहता है
सच होकर भी
झूठ सा लगता है मुझको
इसलिए
मैं समझता हूं कि
उससे मुझे कोई खतरा नहीं

★ ★ ★

सम्पर्क :- सैक्टर 5, प्लाट न॰ 47, रूप नगर,
जम्मू - 180007

वेद कुमारी घई

(16 नवंबर, 1933 - जम्मू)

आमन्त्रण

मैं चली प्रिया से मिलने को
आया है उनका आमन्त्रण ।
अब व्याकुल मेरे प्राण हुए
उत्कण्ठित हैं मेरे तन मन ।। 1 ।।

कर ली है बड़ी प्रतीक्षा अब
मिलने का अवसर आया है ।
गर्मी का भीषण ताप मिटा
पुरवा का झोंका आया है
अब अंग अंग शीतल मेरा
पाकर के अपना जीवन धन ।। 2 ।।

दुनियां के कामों में कैसे
अब मेरा मन लग पायेगा ।
कैसे मैं इसको रोकूंगी ।
क्या रोके से रूक जायेगा ।
मिलने को आतुर होता है
अब तेज़ हुई इसकी धड़कन ।। 3।।

गंगा की डुबकी से सबका
तन मन निर्मल हो जाता है ।
विरहानल में भी जल जलकर
मानव कुन्दन हो जाता है ।
मुझको निष्पाप बनाता है
उनके वियोग में यह रोदन ।।4 ।।

मैं दूर रही प्रिय से लेकिन
फिर भी वे मेरे पास रहे ।
तब दूरी भी मिट जाती है
प्रिय का जब मन में बास रहे
युगलों को बाँधा करता है
ये प्रणय सूत्र का दृढ़ बन्धन ।। 5 ।।

★ ★ ★

सम्पर्क :- 15/2, त्रिकुटा नगर, जम्मू

मोहन 'निराश'

(सन् 1934 ई० - 2000 ई० - कश्मीर)

कहानियां और इतिहास

कथा कहानी, नई पुरानी, से इतिहास रचा जाता है ।
बूढ़ी नानी की नृप-रानी से इतिहास रचा जाता है ।।
ढली उमर पर, चिता-कबर पर यह इतिहास रचा जाता है ।
शाम - सहर पर, निशि-वासर पर, यह इतिहास रचा जाता है।।

★ ★ ★

घटना से घटना जुड़ती है, बन जाती है एक कहानी ।
जिसके पात्र हुआ करते हैं तुझ से मुझ से कितने प्राणी ।।
दो दिन यह गाथा चलती है, मिट जाती रख एक निशानी ।
ऐसे ही कितने चिन्हों से, यह इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

प्रलय निशा कैसे थी बीती ? सृजन दिवस कैसे था आया ?
श्रद्धा ने वाहें फैला कर क्यों कर मनु को था अपनाया ?
कैसें जन्मे जीव धरा पर ? जीवों में मति कैसे आई ?
वात पुरानी छिड़ जाती है, नव इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

कब शैशव ले रोटी भागा ? कब ममता ने देर लगाई -
लौटो, मैं न तुम्हें पीटूंगी, बलि बलि जाऊं किशन कन्हाई !
कब अंबर से मामा उतरा माटी का पुतला दे जाने ?
माँ की ममता, शिशु क्रीड़ा से, यह इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

माटी से माटी जुड़ती है, बन जाता है चन्द्र खिलौना ।
कोई मोहन, कोई राधा, हंसी रत्ती भर, मन भर रोना।।
खिलने वाली कलि माधव की, झरने वाला फूल शरद का ।
सृजन-प्रलय के आख्यानों से, यह इतिहास रचा जाता है ।।

★ ★ ★

कब मेंहदी थी बनी सुहागन ? कब कुम कुम था बन सुहागा ?
कब चूड़ी सधवा होगई ? नथ का भाग्य भला कब जागा ?
कब काजल का रूप बना था, कब पायल ने सोहर गाया ?
प्रहर शगुन के, बात शगुन की, तो इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

कब बातों में बात उलझ कर, प्रश्न उठा था बात उठी थी ?
कब प्रियतम की बाट निरखते, दिवस ढला था, रात उठी थी ?
कब प्रियतम था निर्मम निकला, कब सपने अपने न बने थे ?
इस पर कविताएं बनती है 'औ' इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

अभी अभी जो पायल पहनी घायल होकर चीख रही है ।
अभी अभी जो चूड़ी पहनी, बूढ़ी होती दीख रही है ।।
चले बराती डोली लेकर, अरथी लेकर लौट रहे हैं ।
शव की बासी कच्ची कलिका से इतिहास रचा जाता है ।।

★ ★ ★

कब धरती पर जय ध्वनि गूंजी, कब विजया ने साज सजाया ?
राम राज्य कब खत्म हुआ था ? किसने वह जन राज मिटाया,
कब सुख से दो आंखे सोईं ? कब दुःख से सौ सपने टूटे ?
दृग के छंद, निबंधों से तो यह इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

कब छेनी का सरस परस पा, यह पाहन भगवान् हुआ था ?
कब शिल्पी के टूक बनाने, वह मानव शैतान हुआ था ?
पुण्य किधर से कब उभरा था ? पापों में धरती कब डूबी ?
खेले जाते भेद सकल ये, 'औ' इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

कलिका से कलिका जुड़ती है, बन जाता है हार सलोना ।
जिसकी खुशबू छू जाती है, कर जाती है जादू टोना ।।
नयन निरखना रख देते हैं, ह्रदय धड़कना रख देता है ।
जादू जब बोला करता है, तो इतिहास रचा जाता है ।।

★ ★ ★

कब गलियों में पाप पला था? कब सड़कों पर लूट मची थी ?
कब इस उपवन की कलिकाएं, कांटो में अटकी, उलझी थीं ?
कब दामन पर दाग लगे थे ? कब धब्बों से नाम दबा था ?
इन दाग़ों - धब्बों से ही तो, यह इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

ताना बाना बुन जाता है, बन जाता है सेज-बिछौना ।
जिसको और सजाया जाता, जड़ कर मोती, मढ़कर सोना ।।
जिस पर जन्म लिया करती है, कोई बिष-कन्या मधुबाला ।
नारी से, नारी की गाथा से, इतिहास रचा जाता है ।।

★ ★ ★

कब कौड़ी के मोल बिकी थी, इस धरती की क्वांरी बेटी ?
कब पत्नी ने साड़ी खोली, उसमें पति की लाश लपेटी ?
कब मन का दीवाला निकला, कब मति ही नीलाम हुई थी ?
इन्सानों के खण्डहर से ही, यह इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

कब धरती ने सीना चीरा, मन की ज्वाला, पीर दिखाई ?
कब अंबर ने माथा फोड़ा 'औ' अपनी तकदीर दिखाई ?
कब सूरज पर ध्यान गया था, कब चंदा पर आंख लगी थी ?
भू-भौतिक तथ्यों को लेकर, यह इतिहास रचा जाता है ।

★ ★ ★

बरन बरन के लोग धरा पर, बरन बरन की बातें होतीं ।
बरन बरन की हाट दुकानें, बरन बरन सौगातें होतीं ।।
यहाँ कहीं पर काजल मिलता, यहाँ कहीं पर कालिख मिलती ।
बरन बरन की स्याही से ही, यह इतिहास रचा जाता है ।।

★ ★ ★

(अगस्त 16, 1959)

शशि शेखर तोषखानी

(24 मई 1935 - कश्मीर)

एक खूबसूरत दिन!

आज एक खूबसूरत दिन मुझे अनायास ही मिला
क्वांरी धूप के अगिनत नर्म चुम्बन
मन की हर टूटन पर बिछल गये
गुच्छ-गुच्छ फूलों के तरल-स्पर्श
बहे और
प्राणों में धंसे-बसे संशय को
धो गये !
'प्यार' नीले रेशमी रूमाल सा
कौन इस शब्द को आज फिर
सामने मेरे लहरा गया ?
क्षितिज पार करती बन-पांखियों की एक जोड़ी
लगा मुझे
मेरे भीतर भी कहीं
पंख खोल उड़ने लगी ।
छोटी छोटी लहरों में बतियाता सा
झील का जल
जाने क्यों आज मुझे भा गया !
सोचा इस दिन का
खूबसूरत दिन का
क्या करूं ?
इसे अपने कोट में फूल सा सजाऊं
या तुम्हारे जूड़े में इसे भरूं ?
इस से अपनी निर्वसना कुण्ठाओं को ढक्कूं
या
प्राप्ति की पताका बना

मन में कहीं लहराऊ ?
तुम्हारे माथे पर रंगीन बिंदी सा इसे जड़ दूं ?
या किसी शिशु - भाव को
रिझाने के लिए
गुब्बारे सा उड़ाऊँ ?
इस दिन का
इस खूबसूरत दिन का क्या करूं ?
मैं सोचता रहा, सोचता रहा, सोचता रहा;
लेकिन
मैंने कुछ भी किया नहीं
रस का अबाध एक झरना
कहीं से
मेरे लिए फूटा था
मैंने अंजरी दी
मगर पिया नहीं
आह ! यही है क्या मेरे संकल्पों का बल ?
आज भी इस खूबसूरत दिन भी
मैं पूरी तरह जिया नहीं

★ ★ ★

सम्पर्क :- डी-8/8050, वसंत कुंज,
नई दिल्ली - 110 070

अयूब प्रेमी

(सन् 1935 ई०)

इरादा

पकी रात तीखी ठंड को
धमनियों से गरमा दूं ।
अंधेरे का सन्नाटा
तकिये के पास बैठा है ।
उसे गीत सुना दूं
मकड़ी के जाले में फंसी जिंदगी
की केंचुली उतार कूड़े में फैंक दूं
पीले चांद को मस्तक से छिटक दूं ।
अभी तो सम्भावनाओ का प्रातः
चेहरे पर पोतना है
मुस्कराहट फैला कर
तनाव को झटकना है
वातावरण का चोगा उतार कर
चीथड़े की तरह
अंधेरी अलमारी में छिपा दूं ।
अहसास का कच्चापन
कड़वे बादाम की तरह थूक दूं
गर्म गर्म धूप को बिखरने दूं ।
टोकरी भर चांदनी को
शरीर के रोम-रोम पर उंड़ेल दूं ।
यादों के दामन को
कस कर लपेट लूं ।
लोटते हुए सायों को
रस, रूप और गंध दूं ।

पद-चापों के नीचे
मखमली आकाश बिछा दूं ।
चाय के प्याले में
गेहुंए रंग की चुस्की मिला दूं ।
उजलाये यौवन की मस्ती
एक बार फिर हिला दूं ।
मुझे सपनों को उगाने की
हॉबी हो गई है
कैक्टस के पौधे पर
एक कली भावी हो गई है
उनकी व्यर्थता में
जीवन-अर्थ तैर आया है
अनचाही बेहूदा बातों को
बर्दाशत करने का अब समय नहीं है
पकी रात की तीखी ठंड को
धमनियों से गर्माना है
अन्धेरे का सन्नाटा
तकिये के पास बैठा है
उसे गीत सुनाना है

★ ★ ★

पृथ्वीनाथ मधुप

(अप्रैल, 1937 - गांदरबल, कश्मीर)

पाँच कविताएँ

1. सवाल-एक

साये में था चिनार के
पता नहीं था
साया है चिनार का

मरू-ढूह पर
खड़ा
पैर धंस रहे
रेत की आग की झुलसन में

दूऽर तक नहीं कानः
लौट-लौट आती कराह

-ऐसे में-
प्रश्न बेसाख़्ता चिल्लाया
चिनार !
ओ चिनार !!
चिनार ओ !!!
कहाँ हो ?

2. सवाल दो

फुनगी से चिनार की
सरपत -झुरमुट के -
अन्दर से कहीं
यहाँ तक कि
बच्चा सफेदों की

कोमल शाखों से भी
उतरती -
रट एक ही
प्रसन्न होते जा रहे 'हांगल'*
इस रटंत से ?
'तोता बोलो गंगाराम'
भूल गये क्या तोते ?
या
आप ही यह
तोता बोलो गंगाराम हो गया !

3. उन बंजरों को क्या

आँख को प्रभात
होंठ को खिलाना
सीने को आनन्द करता
खिलता फूल फुलवाड़ी का

उन बियाबान सनकी ज़िद्दी
बंजरों को क्या
जिनकी -
न आँख
न होंठ
न सीना

शब्द ही नहीं
तो कोई अर्थ भी नहीं
उनको
फूल
फुलवाड़ी
खिलना
और सुगन्ध

---

* 'हांगुल' (कश्मीरी शब्द) का बहुवचन

4. फूलो के लिये

बारहा कहा
पलकों से
बरसात न बनो

हवा न होओ खिजाँ की
तमाम अफसरी विशेषण बटोर
ऑर्डर किया
होठों को

बांह धरना कन्धे पर
अकेलेपन के
सीख लो
दहाड़ते समझाया
अन्दर में के को
रात -रात भर
घूरते न रहो
तन्हाई को
तकिया करो
इसकी गोद को
सपने बुनो
धीमी बहती बयार के
झर-झर झरनों के
ताज़ा गुनगुनी किरण के ....
इन नाज़ुक प्यारे
फूलों के लिये

5. अब

अब --
भूलता नहीं
टहनी-टहनी
बसन्त
न निकलता
दूर तक टहलने
हरी ओसिल दूब ओढ़े

कहीं बहुत दूर
उलझ गया बुरी तरह
कंटीली झाड़ में
बसंती बयार का आँचल

भागते -उछलते
ऊंचें कंठ से
वनगीत गाता
रोम - रोम भिगोने
झरना भी नहीं उतरता

कंटो में ही अटक गई
कविता
झुरमुट वासी परिन्दों के

बरसों से अब
बतियायी नहीं
अकेले में
चिनार की ठंडी छांह

* * *

सम्पर्क :- 84/सी-3, ओम नगर, उदयवाला
बोढ़ी, जम्मू - 180 002

भान 'भार्गव'

(सन् 1937 ई॰ - 2002 ई॰ - जम्मू)

जागो

जागो स्वप्न-मुग्ध मेरे देश के सपूत जागो,
मुस्कान बांटने वाले अमन के दूत जागो ।
जिन लोरियों से मां ने था तुम को सुलाया,
जिस दूध ने जिस रक्त ने तुम को गरमाया ।
जिस मां के आंचल में, जिस पवित्र गोदी में,
उस प्रात की अरूणाई में मकरंद संग खेले ।
आती है हम से जिसकी अब तक भी सोधी गंध,
उस माटी के कण कण की उस रक्त की सौगन्ध ।
जागो स्वप्न-मुग्ध मेरे देश के सपूत जागो,

हे वीर ! जागो कि तुमको मां का क्षीर जगाता ।
धवल हिमालय पर छिटका, अरूण-अबीर जगाता,
फौलादी बाहें भाईयों की बहिनों का स्नेह जगाता ।
प्रणयी परिणिता का प्रेम-अधीर-गेह जगाता,
कृष्ण की बांसुरी पै बोराई भोली गोपिका की कसम ।
यौवन-माती ग्राम-बधु की चितवन तुझे जगाती,
हे शिव ताण्डव लयपर, शत्रु के मृत्यु दूत जागो ।
जागो स्वप्न-मुग्ध मेरे देश के सपूत जागो,
तुम जागो कि सुहागिन आरती सुहाग सजाए ।
तुङ्ग हिमालय के सीने की धधकी आग जगाए,
नाज़ुक कलाईयों में खनकती चूड़ियों की कसम ।
भाल की बिंदी की कसम मांग के सिन्दूर की कसम,
तुमको लाखों नवबन्धुओं का अमर सुहाग जगाए ।
अर्जुन औ प्रताप, शिवा औ गोबिन्द के,
गौरवमय अतीत के इतिहास की कसम ।
वर्त्तमान पुकारता है "मेरे भूत जागो",
जागो स्वप्न-मुग्ध मेरे देश के सपूत जागो ।

* * *

रतनलाल शान्त

(सन् 1938 ई० - श्रीनगर)

दीवारें

कच्चे ईंट-गारे की थीं।
बच्चों सी रोने लगीं
घर उनको सौंपते हुए
हमने उनसे वचन लिया था
कच्चा पक्का, जो भी उनसे बन पड़ा
कि अब के बाद का सच
राज़ बनाए रखना
चुप रहना ।
दोबारा मिलने गए हम जब
अपनी दीवारों से
उत्तेजना में फर फर बोलने लगीं
वे इबारतें
हमारी अनुपस्थिति में
जो आग ने उन पर कुरेदी थीं
पक गया था उन का ईंट का गारा
बात बेबात खिलखिला कर हँसती गईं
और बोलती गईं लगातार
मज़ेदार किस्से
संगीनों के सपने
रंगीन असंभावनाओं के ।
हमारे डरे चेहरों की नकल उतारी
खिलंदड़ी दीवारों ने
दोहरी हो गईं हंसते हंसते
हमारी इकहरी दीवारें
हम चुप होते गए
संतोष हुआ हमको
सचमुच सच को राज़ बनाए रखा है
हमारी दीवारों ने ।

★ ★ ★

सम्पर्क :- 904, सुभाष नगर, जम्मू

के० के० नागर

(24 अक्टूबर, 1938 – कूहटा, कठुआ)

"डुग्गर देश"

अनुपम सुन्दर देश डोगरा
स्वर्ग तुल्य है इस की धरती
भारत मां अपने वीरों पर
धन्य-धन्य हो गौरव करती ।

तपों भूमि ऋषियों मुनियों की
धर्म धरा गुरूओं पीरों की
रंग भूमि यह रसिक जनों की
क्रीड़ा स्थली कई 'हीरों' की ।

उदयाचल की स्वर्णिम किरणें
इस के खेतों को संवारती
रात वार कर सुखद चांदनी
इस की सुन्दर छटा निखारती ।

हिमाच्छादित पर्वत माला
उस पर देवदार, के तुरूवर
चारू दृश्य चहुं ओर दृगों में
सदा प्रदर्शित करें निरंतर ।

हिमगिरि के शिखरों पर शोभित
रंग बिरंगी धवल शिलाऐं
उधर तीव्र गाति से इठलाती
नदियां कल कल शोर मचाऐं ।

वन्य प्रकृति के जीव जन्तु
स्वच्छन्द फिरें इन सघन वनों में
कहीं प्रफुल्लित सुर्भित उपवन
करते कुतुहल रसिक जनों में ।

निरझर का गिरता शीतल जल
अति सुन्दरतम लगे कमल पर
विहग जगत का कल कलोल
करता रोमांचित सकल चराचर ।

सरहुंईसर, मान सरोवर
दे अमृत सा मीठा सर जल
"खग विहार" शोभित है तट पर
करें विहग गण पल-पल कलरव ।

मन्दिर मस्जिद, गुरूद्वारों में
उठे शंख धुन, अजां वाणियां
कहीं चर्चों में घंटों के स्वर
धर्माधिकार की दें निशानियां ।

चन्द्रभागा, तवी, उज्झ, देवक
कितनी पवित्र और कितनी पावन
इसके तट पर नगर, धर्म स्थल
लगते हैं कितने मन भावन ।

पावन गुफा वैष्णों देवी की
दर्शनार्थ लाखों जन आयें
जय माता की बोल-बोलकर
अपना मनवांछित फल पायें ।

शिव खोड़ी, वृद्धामरनाथ और
शुद्ध महादेव का पावन मन्दिर
रणवीरेश्वर रघुनाथ गदा धर
हैं सब इसी प्रदेश के अन्दर ।

बावा जित्तो की समाधि पर
लगता सदा झिड़ी का मेला
श्रद्धालूजन भरें चौकियां
पा कर प्रायश्चित की बेला ।

डुग्गर के ही महाराजाओं ने
किया सुरक्षित सकल क्षेत्र फल
जम्मू-पुरमंडल त्रिवेणी में
बनवाए सुप्रसिद्ध धर्म-स्थल ।

डुग्गर देश शीश भारत का
हम सब हैं इस के रखवाले
शीश कटा कर इसकी रक्षा
सदा करेगें हम मतवाले ।

* * *

सम्पर्क :- गाँव कूहटा, तहसील हीरानगर,
ज़िला कठुआ

सुतीक्षण कुमार 'आनन्दम्'

(सन् 1939 ई० - जम्मू)

दो कविताएं

स्रोत

रात के गहन सागर में
एक जीर्ण शीर्ण यान-सी
मेरी लोथ वही जाती है
दूर दूर तक
कोई द्वीप नहीं
कोई संकेत नहीं
जो सहारा बने मेरा ।
यदि है तो -
केवल विशाल सुनसान
एक
अव्यक्त वेदना का स्रोत ।

* * *

हे देव

हर किसी के जीवन में
कुछ न कुछ
फूल खिला करते हैं
जो बांटा करते हैं
परिमल पराग ।
पर-
मेरे जीवन में
खिली नहीं कोई कली
जो दें मुझ को अनुराग
अंकवार ले मुझ को

अपनी बाहों में ।

यदि

मिला मुझे कुछ

तो प्यास

हे देव !

प्यास ही प्यास

★ ★ ★

सम्पर्क :- 402 अम्बफला, जम्मू

देशबन्धु डोगरा 'नूतन'

(4 नवंबर, 1939 - रामनगर, उधमपुर)

अरी प्रिये तुम होती चाँद

अरी प्रिये तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ,
झिल मिल नील गगन को फांद,
बन जाता मैं तेरा हार ।

हाय हमारा यह विज्ञान,
ले आया यह निर्मम हार,
हाय अणुयुग का वरदान,
वाधक बनता बार-बार ।
मेरी कल्पना का अवसान,
बदल गया जग का व्यवहार,
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ।

उत्तरीय सा नील गगन,
भर जाती तारों से अंक,
कोई सरसिज मुग्ध मगन,
जाँच रहा हरियाली पंक,
मानस जल की स्वर लहरी,
वादन करती बारम्बार ।
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ।

कोमल मन की यह धड़कन,
चली गई वर्गों के साथ,
भावों पर प्रतिपल बंधन,
मूक हैं मन वीणा के तार,
पंख कटा सा उड़ता यान,
जाना है सागर के पार ।
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार

घोर तिमिरमय श्याम निशा
गहन निराशा का सागर,
लहर उठे इक पूर्व दिशा,
निमिष भरे आशा गागर,
चंद्र शिशु आभा का यान,
करता पीत क्षितिज को पार ।
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ।

श्वेत पीत यह पूर्वांचल,
मानो जाग चुका है आज,
करे टटीहरी स्वर प्रीतपल,
टिट्‌ टिट्‌ टी मीठी आवाज़,
शान्त रात्रि पक्षी प्रहरी,
लोरी में बिखराता प्यार ।
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ।

आ जाते हैं उमड़ घुमड़
श्याम वर्ण की चादर तान,
वारिद गण करते घड़ घड़,
कोलाहल का क्रन्दन गान,
मेघों में मुस्काता चाँद,
देख धरा को बारम्बार ।
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ।

चिन्ता सागर में तरणी,
ओड़े आशा की पतवार,
दूर किनारे पर धरणी,
देख रही है मेरी बाट,
उच्छवासों की पवन महान,
कर देगी नदिया को पार !
अरी प्रिय तुम होती चाँद,
बन चकोर मैं करता प्यार ।

* * *

सम्पर्क :- वार्ड न० 2, इन्दिरा नगर,
उधमपुर - 182 101

पद्मा सचदेव

(सन् 1940 ई० - जम्मू)

जीवन का संगीत मधुर है

कट जाती हैं दुःख की घड़ियां,
आशा की स्वर लहरी सुनकर
काली रात में छिपा हुआ है
ऊषा काल का रक्तिम अम्बर

धरती का संघर्ष-प्रिय मन
सदा रहा है आशावादी
अम्बर के तारों से जिसने
अपनी निश्चित राह मिला दी

रात्री की अन्तिम वेला में
प्रात-विहग का कंठ मुखर है ।
धरती के कण कण में झंकृत
जीवन का संगीत मधुर है ।

सदियों से जाना पहचाना ।
अम्बर देख रहा है कब से
युगों युगों से विह्वल आतुर
धरती मिलने को अम्बर से

नभ से उतरा मंद समीरण
तारों का संदेश सुनाने
'एक पदार्थ के ही टुकड़े ये
अब तक बिछुड़े रहे अंजाने !'

मिलनातुर धरती ने अपना
नभ की ओर बढ़ाया कर है !
धरती के कण - कण में झंकृत
जीवन का संगीत मधुर है ।

रवि की रश्मि से छूकर सहसा
फली चटक जाती है वन में
जीवन आशा भर जाती है
स्वाति बूंद चातक के मन में

धरती के कण कण में सोया
चेतन जग जीवन का स्पंदन
मिट्टी की निश्चलता मृत्यु
ज़र्रों की गति ही तो जीवन

निर्बल मुत्यु स्तब्ध मौन है
जीवन कितना तीव्र प्रखर है ।
धरती के कण कण में झंकृत
जीवन का संगीत मधुर है ।

* * *

सम्पर्क :- 242, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-19

रजनी पाथरे राज़दान

(27 अगस्त, 1940 - कश्मीर)

'मेरा गुलेलाल, मेरी नर्गिस'

कुछ दिन पहले गुलेलाल व नर्गिस
मेरे गुलशन में उग आई थी !
इसलिए कि मैनें उनके बीज, खाद, माटी
घाटी से चोरी चोरी चुपके चुपके चुराए थे !
मैंने रात-दिन अथक परिश्रम कर
उन्हें सींचा, संवारा, सहेजा था
हर रात मैं उनकी बहार के
सपनों को लेकर
गुलमर्ग के हरे-भरे मैदानों में
अपना लाल दुप्पटा हवा में
फहराती चली जाती.....
और फिर एक दिन
जब आँख खुली तो देखा..
मेरा गुलेलाला, मेरी नर्गिस
मुझे मेरे ही सपनों के बीच
छोड़ कर, चले गए थे
अपने रहबर महजूर और नादिम की तलाश में !
उन्हें लौट आने की मनुहारे करते करते
मेरा कंठ शुष्क हो रहा है !
कि मैं नहीं सह सकती
गुलेलाला की प्यार से सनी छाती
खूंखार दरिन्दों की गोलियों से छलनी हो !
नहीं देख सकती मैं
कि उसकी छाती से प्यार की धारा

लाल लाल लहू बन
धरती को जला दे !
और नहीं सह पाऊंगी
कि मेरी नर्गिस की कमनीय काया की पंखुरियाँ
फिर से आतंकी पतझड़ के
खुरदरे, खौफ़नाक नुकीले नख
नोच नोच कर
बर्फीली आँधी में छितरा दें !
इसलिए मैं तब तक
उन्हें गुहारती चली जाऊंगी
जब तक घाटी की फाख्ताएँ
उन्हें उपने रेशमी परों पर लाद
मेरे रूठे, उदास गुलशन में
लहराने के लिए
छोड़ न जाएँ !

★ ★ ★

सम्पर्क :- अरोहण बंगला, 30 पुष्पक पार्क,
औंध, पूणे - 411 007

ज्योतीश्वर पथिक

(सन् 1940 ई॰ - जम्मू)

बंदिश

आंख बंद
कान बंद
ज़ुबान बंद
एक नया अर्थ दिया जा रहा है
बापू की शिक्षा को
अहिंसा नहीं बल्कि हिंसा द्वारा
लिखा जा रहा है, एक नया इतिहास
बंदूक के साए में
कोई अर्थ नहीं रखती
कोई घटना
कोई दस्तावेज़
गीता या कुर्रान
बाइबल का फरमान
इक अनजाना आदेश
इन का मूल मंत्र है
जिन के वश में
होती हैं हत्याएं
मारकाट
हिंसा
बह जाता है खून
यह सब कुछ घट जाने के बाद भी
देखो, सुनो
मगर कुछ न कहो
वर्ना तुम सब जानते हो ।

* * *

सम्पर्क :- 115, न्यू हास्पीटल रोड़, जम्मू - 180 001

चन्द्र कान्ता

(1 सितंबर, 1941 ई॰ - श्रीनगर)

रंग बदलता मौसम

टपक रहा है
मैले बादलों ढका आकाश !
दिन बेहद उदास है !
बह रही है बांसवन में
कोई अकेली आँख !
पत्तों को थामें लटकी हैं फिसलनी बूंदें !
कोई पिरो तो दे मोतियों के हार ।
हवा छिप गई है खुबानी के खेत में
विदेशी पहाड़ियों की ओट ।
पेड़ मुँह लटकाए खड़े हैं
कहाँ गई पुरवा चकमा देकर ?
घड़ी भर तो बतियाते, मिल बैठ !
बादलों की भरी कोख से
कब झांकेगा, सूरज का गीला सिर ।
अरे ! यह क्या गड़बड़झाला ।
कि पलक झपकते झांक आया ।
मैं पल में आतशी चिनार
एक विराट पुल कैसे बिछ गया
पैसेफिक से झील डल तक ?
लो, मौसम पेंगे लेने लगा
सैन फ्रांसिसको से श्रीनगर बीच !
मनमौजी बंजारा !
दिन तो वहाँ भी उदास हुआ करते थे
कभी-कभी !

बरसते दिनों में भेड़ों का मुखौटा पहन
घूमते थे सावनी बादल
गुमसुम, गुमसुम
और ठिठुरती हवा
पसलियों में घुसती थी
ठंड से पनाह की खातिर !
कि अगली सुबह
'गिलि गिलि छू' कर
कूद पडता था सूरज झील में
सुनहरा मुकुट चमकाता,
गुदगुदाता बगलें पानी की ।
उदासी खिसक जाती दबे पांव ।
हवा भी पाला बदलती
गिरगिटी मौसम के साथ,
और छिड़क देती लहरों पर
मुट्ठी भर-भर पिघला सोना ।
पंखों में चोंच घुसाए बैठी उदास बतख
नए इलहाम के साथ पानी में कूद जाती
और इस छोर से उस छोर के बीच
क्वैक-क्वैक पुकारती,
अपने ही बनाए लहरों के घेरे
तोड़ने लगती ।
भला मौसम के आगे
क्या सुख और कैसा दुःख ????

★ ★ ★

सम्पर्क :- 3020, सैक्टर-23, गुड़गांव (हरियाणा)

प्रियतम चन्द्र शास्त्री

(12, अप्रैल 1941 - जम्मू)

"जम्मू"

जम्मू नाम नगरी में जामुनों से वृक्ष लदे
लगता आकाश में यह काला पारावार है
वदन-कमल से कमल सारे जीत लिये
जम्बूलोचना यहां की हर एक नार है
मीठी मीठी डोगरी रसीली बोली बोलती हैं
सादी वेश-भूषा सीधा-साधा व्यवहार है
चेहरे गोल गोल गाल लाललाल बिन पिये
सतियों को पतिव्रत सत् का खुमार है ।

घोडियां, सुहाग, लोकगीत गाती नारियां हैं
कोकिला का कण्ठ उनके आगे कुण्ठधार है
चाव से बनाती हैं खिलाती बड़े प्यार से वे
प्यारा प्यारा राजामाष भात का आहार है
खाते पीते वीर आगे बढ़ते समीर से हैं
छाती उनकी ढाल और हाथ तलवार है
शक्रगढ़, स्यालकोट, छम्ब यहां पास लगे
बांहों का दिखाया जहां पौरूष अपार है ।

खूब लम्बी गुफा और पीरखोह नाम है
शिवजी ऊपर गिर रही जलधार है
मन्दिर यहां पे नहीं कोई चार पांच छः
मन्दिरों की यहां पर बड़ी भरमार है
मन्दिर दीवान खड़ा जैसे कि दीवान होवे
रघुनाथ मन्दिरों का बड़ा सरदार है ।
यूँ तो यहां देखने को और भी बाजार बड़े
रघुनाथ वाह वाह वाह क्या बाजार है ।

बाहु के किला में माता महाकाली बैठकर
भक्तजन की रोज रोज सुन रही पुकार है
उधमपुर, कुद, बटोत, पत्नी टॉप हो
प्रकृति कराती चोटी चोटी को सिंगार है
कटड़ा में त्रिकुटा की विकट पहाडियों में
वैष्णों का बीच यहां गुफा-दरबार है
वाराणसी यहां गुप्तगंगा उत्तरवाहिनी में
पूरा पुरमण्डल पूरी तरह हरिद्वारा है

चतुर्वदन चतुर्वेद पाठ के लिये लिये
वेद पाठी एक मुंह से पढ़े वेद चार है
ब्रह्मा जैसा लगे है सिपाही सिटी चौक का
एक मुंह से चारों ओर देखे बार-बार है
स्वर्ग क्यों बनाया उससे अच्छा जम्मू स्वर्ग है
ब्रह्मा सठियाया उसकी बुद्धि में विकार है
कोटि कोटि देवता सदा से निवास करें
ऐसी पुण्य धरती को मेरा नमस्कार है

रवि की तवी नदी है प्यारी प्यारी पुत्रिका
किरण-कर से लहर कर को कर रहा दुलार है
इस ओर तवी-सेतु उस ओर बागेबाहू
बारह माह यहां पे बसन्त की बहार है
रूस चीन आदि शेष देश सिर्फ देश होंगे
मेरा डुग्गर देश देश नहीं स्वर्ग द्वार है
जन्म जन्मान्तरों से मेरे इससे प्रीत हुई
प्रियतम नाम मेरा नहीं निराधार है ।

सुख सन्तोष बड़ा माशा नहीं रोष दिखे
सब का सुनाई देता शुभ समाचार है
सगे भाई बहनों जैसा प्रेम करें नागरिक
राष्ट्रीय एकता का यही तो आधार है

हिन्दु मुसलमान सिख बौद्ध साथ साथ रहें
जैसे लम्बा चौड़ा कोई एक परिवार है
नहीं कोई बेगम गुलाम कोई बादशाह
जनता ने अपनी बनाई सरकार है ।
लेखनी कवि की होती नहीं सिर्फ लेखनी ही
कवि ललकार है तो कभी तलवार है
कभी कभी सभी को बुलाती बड़े प्यार से तो
काव्य पुष्प हार का भी देती उपहार है
काव्य हो निराला अथवा काव्य में प्रसाद हो
ऐसा काव्य काव्य क्या जो काव्यता पै भार है
जम्मू में भी अच्छे अच्छे कवियों की कमी नहीं
जम्मू वासी कवियों का काव्य धुआंधार है
सारे जम्मू नगर में बनी जो ऊंची कोठियां
कुबेर के ख़जाने को भी कर रही धिक्कार है
दूर अखनूर से है आई ठाठें मार मार
बीच रणवीर नहर शहर आर पार है
बावा जित्तो जी के चेले आते दूर दूर से
झिड़ी वाला मेला एक नया संसार है
बड़ी बड़ी राजधानी इसके आगे भरें पानी
इसके आगे रोम, बेबीलोन, लन्दन बेकार हैं ।

* * *

सम्पर्क :- केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, शास्त्री नगर, जम्मू

शकुन्त 'दीपमाला'

(27 अक्तूबर, 1942 - जम्मू)

आओ कुछ सोचें

आओ कुछ नया सोचें
कि अब अन्धेरा
हमारी खिड़कियों के भीतर
घुस आया है
लम्बे लम्बे
घने पेड़ों का
भुतिहा साया
रोशनी के कपोत
पंखों सहित
निगल गया है
आओ कुछ नया सोचें
कि अब नदी
दोनों किनारे तोड़ कर
अपने भीने आँचल में
सफ़ेद पत्थरों को
भर कर
कुछ अटपटा सा
गीत गाने लगी है
आओ कुछ नया सोचें
कि शाम होते ही
चीड़ के जगंलों ने भी
चीख़ना शुरू कर दिया है
और हर एक पेड़ से
लिपट कर
रोती हुई हवा का आँचल भी

पूरी तरह भीग कर
भारी हो गया है
आओ कुछ नया सोचें
कि गर्वीली पुख्ता चट्टानों ने
टूट-टूट कर
वादियों की गोदियाँ
भारी भरकम पत्थरों से
भर दी हैं
और अब
हर दूब की जगह
असंख्य विषधर
जहाँ तहाँ धरती को गोद कर
अपने कोटरों में
घात लगाये बैठे हैं
आओ कुछ नया सोचें
कि अब धरती पर
यत्र तत्र सर्वत्र
विष की नयी कोपलें
फूट रही हैं
हर कोई विष खा रहा है
विष पचा रहा है
और आकाश भी
विष बरसा रहा है
आओ कुछ नया सोचें
कि कोयल बुलबुलों के साथ
उदास बैठी है
निरन्तर अनावृष्टि से
नृत्य का ताल भूलकर
मयूरा

काकभशुन्डी सा
काँव काँव करने लगा है
आओ कुछ नया सोचें
कि अब हर रास्ता
कुछ दूर जा कर
बन्द हो गया है
चाँद गर्म
और सूरज ठन्डा हो गया है
आओ कुछ नया सोचें
कि सोच ही विकल्प है
कुछ नया खोजें
बची हुई आस्थाओं को सहेजें
बिखरे हैं जो तिनके
समेटें
कुछ थोड़े से ही
बहुत होता है
प्रयास निर्माण है
तो प्रयास करो प्यारे
हार मान लेने से
अपनी मृत्यु मान लेने से
तो अच्छा है
कुछ नया सोचें
विकल्प तलाशें
कुछ नया करें

* * *

सम्पर्क :- 161/62, सरवाल, जम्मू

चांद 'दीपिका'
(12 जून, 1943 - जम्मू)

कविता

शब्द छलकते रहे,
स्वप्न महकते रहे ।
नैनों के ताल में,
रंग बिखरते रहे ।

छन्द मचलते रहे,
भाव सिहरते रहे ।
कल्पना कदंम्ब से
गीत झरते रहे ।

श्वास चलते रहे,
स्मृतियां गढ़ते रहे ।
कामना ढलान से,
मन फिसलते रहे ।

उम्र ढोते रहे,
वादे बोते रहे ।
एक चेहरे को
लोग तड़पते रहे ।

अश्क झरते रहे,
प्यार पलते रहे ।
बात बेबात पै,
गाल दहकते रहे ।

पग थिरकते रहे,
नक्श बनते रहे ।
लोग कांटे उगा,
खुद उलझते रहे ।

* * *

सम्पर्क :- 323, रिहाड़ी कालोनी, जम्मू - 05

जितेन्द्र उधमपुरी

(9 नवंबर, 1944 - उधमपुर, जम्मू)

गीत

तेरे अधरों के कंपन से
सारी धरती गीत हुई है ।
छलक गई गालों की लाली
संध्या सुर-संगीत हुई है ।।
तेरे अधरों....

अलकें जैसे बादल काले,
नयन हुए मदभरे प्याले
किसी दूज के चाँद के जैसे
कानों के ये तेरे बाले ।।

सजग सलोनी प्रीत हुई है ।
तेरे अधरों ....

होठ हैं जैसे कमल-कमल,
गोरा बदन है मखमल-मखमल
संगमरमर की प्रतिमा जैसे -
चलता-फिरता ताजमहल ।।
धरती सारी मीत हुई है ।
तेरे अधरों .....

शब्द पा गये भाव तुम्ही से,
मौन मूक सी अंगड़ाई है ।
तन-उपवन में फूल खिले हैं
पवन बासंती घिर आई है ।।
कल की बात अतीत हुई है ।
तेरे अधरों.....

★ ★ ★

सम्पर्क :- 1 - सुभाष नगर,
पास जे०के० बैंक, जम्मू - 5

इन्दु भूषण
(2, अप्रैल, 1945 - उधमपुर, जम्मू)

फूल

फूलों का खिलना
कलियों का देख उन्हें मुस्काना,
और फिर उन्हीं में झर जाना
क्या जीवन का
सत्य यही है ?
जीवन भर लड़ते रहना
तिल तिल मरना
तिल तिल घटना
फिर
इच्छाओं की नन्ही नन्ही
नावों पर बैठ
समय की लहरी संग बहना
किस ओर,
किस ठोर
एक पहेली
न सुलझे
फूलों का खिलना
कलियों का देख उन्हें मुस्काना
और फिर उन्ही में झर जाना
क्या जीवन का
सत्य यही है ?

* * *

सम्पर्क :- द्वारा - मानवी प्रकाशन, पंजतीर्थी, जम्मू

शामा

(28 जुलाई, 1945 – कश्मीर)

तुम्हें याद किया

तुम्हें याद किया मैंने
जैसे चिनार की शाख़ को छूआ मैंने
तुम्हें प्यार किया मैंने
जिन्दगी को स्वीकार किया मैंने ।
छाई है घनी छाया तेरी आस्था की
आँखें बन्द कर एकालाप किया है
तुम्हारे चरण स्पर्श की उष्मता में
निराकार का साक्षात्कार किया है ।
अब नहीं बंटता-सूनापन
अन्धेरे सुनसान दायरों में
दौड़ता है सुनहरा उजाला
मेरी तलाश में
गली गलियारों में ।
तुमसे मिलकर मंदिर की मूर्ति का
ईश्वर तत्त्व कण-कण में महसूस किया है ।
तुम्हे याद किया है मैंने
जैसे चिनार की शाख़ को छुआ मैंने ।

★ ★ ★

सम्पर्क :- बी-113, चितरंजन पार्क, नई दिल्ली-110 019

अशोक जेरथ

(16 मार्च, 1946 - जम्मू)

कल जो बीत गया

तुम मेरा कल लौटा दो
मैं लौट जाऊंगा
मुझे मेरा आज दे दो
मैं थिर हो जाऊंगा
पर
तुम्हारे पास
न मेरा कल है
न ही आज सुरक्षित है
तुमने सदा काटा है पानी को
आज और कल में
फिर
दूसरे क्षण देखा तक नहीं
कि पानी तो कटा ही नहीं
हवा को ही बांधते
तो कुछ बात होती
घूप और छांव के अन्तर को पाले
मैं आज
अपने कल को बीन रहा हूं ।

* * *

सम्पर्क :- 1/118, विकास नगर, सरवाल, जम्मू

रमेश मेहता

(सन् 1947 ई० - जम्मू)

सपना, एक संवाद

उसने कहा
चलो एक सपना देखते हैं
मैंने व्यंग्य कसा
सपना भी क्या सायास देखा जाता है ?
और यदि देखा भी जाता है
तो क्या मिल कर देखा जाता है ?

उसने ठुमक कर कहा
हाँ, देखा जाता है
यदि अपने मन का देखना हो तो

फिर उसने तुनक कर पूछा
देश को स्वाधीन बनाने का सपना
क्या सबने मिल कर नहीं देखा था ?

चलो हमने हार मान ली,
चलो, देखते हैं मिलकर एक सपना
तुम्हारा या मेरा नहीं
नितांत अपना
लेकिन यह तो कहो इस आपाधापी में
सपना देखने के लिए समय कहां से निकलेगा
कहां से जुटाओगी सपना देखने की आदर्श सामग्री ?

सामग्री यूं आसानी से जुटा पाती
तो सपना देखने की ज़रूरत ही किसे थी

सामग्री जुटानें में मैं सहायता करूँ ?
बताओ सपने में क्या देखना चाहोगी ?

सपने में क्या देखा जाता है
बुद्धू हो इतना भी नहीं जानते ?
सपने में एक ऐसा आलौकिक जीवन देखते हैं
जिसे दूरदर्शन भी नहीं दिखा पाता
बादलों के बीच तैरता एक बंगला होता है
हवाओं में अपनी मस्ती से रास्ता बनाने वाली गाड़ी होती है।
सुख की एक नदी होती है
जिसमें तैरते हुए कभी कोई नहीं थकता
एक छोटी सी गृहस्थी होती है
किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप से परे
उन्मुक्त, उद्दाम......

ऐसा ही सपना हर कोई देखेगा तो कैसे चलेगा ?
यूँ भी
इस सपने को देखते
न जाने कितनी पीढ़ियाँ नष्ट हो गईं
और कहीं कुछ नहीं बदला
तुम्ही बताओ
सिर्फ अपने बारे में सपना देखना भी कोई सपना देखना होता है ?

मेरा अपना सपना है
तो जैसा मै चाहूंगी वैसा ही तो देखूंगी
सपने में भला यह सब नहीं तो क्या झोंपड़-पट्टी की छुनिया बनूंगी
आतंकवाद की आग में जलते किसी मुहल्ले की बलात्कारित युवती
या देश की राजधानी के बीचोंबीच
सरेआम महिलाओं से की जाने वाली छेड़छाड़ की निरीह गवाह

तुम सपना देखते देखते
कहां से कहां भटकती जा रही हो ?

तुम भी अजीब हो
न ऐसे देखने दोगे न वैसे
जाओ, हमें नहीं देखना तुम्हारे संग कोई भी सपना

सपना नहीं देखोगी
तो ज़िन्दा कैसे रहोगी ?
सपना तो देखना ही होगा
एक बेहतर दुनिया
एक बेहतर समाज
एक बेहतर समझ के लिए

तो इसमें हम कहां होंगे ?
हम होंगे तभी तो समाज होगा
हम होंगे तभी तो सपना देखने वाली आँखे होंगी
हम होंगे तभी तो सपनों को साकार करने का हौसला होगा
हम होंगे तभी तो दुनिया की तस्वीर बदल जायेगी
हम होंगे तभी तो एक नई सुबह मुस्कुरायेगी
और यह सुबह सिर्फ हम दोनों के घर को छू कर
लौट नहीं जायेगी
उसके ओठों पर सूरज चमकने लगा था
मैं चांद की रोशनी में नहा रहा था
सपने की दुनिया में एक खामोश इंकलाब आ रहा था !

* * *

सम्पर्क :- 235- रिहाड़ी, जम्मू

चंचल डोगरा
(जनवरी, 1947)

बहुत दिन हो गये

बहुत दिन हो गये
शहर छोड़े,
ऐसा नहीं
कि मुझसे
तुम्हारे बिना
जिया नहीं गया
पर
जब-जब
स्मृतियों से
उतर
एक कबूतर
चुगने लगता है
हस्त रेखाएं
चूमता है
सागर - पांव ।
हाँ
बहुत दिन हो गये ।
शहर छोड़े
पर
जब - तब
आंखों में
लगती है
तैरने
पाषाण खण्डों से
उत्तर

सागर की
दोपहरी - नांव ।
हाँ
बहुत दिन हो गये
शहर छोड़े -
पर
जब-तब
गुहारती है
रजनी-गंधा के
कांधे पर
सिर टिकाए
तंबीयाई - सांझ
मेरे शहर
क्यों नहीं
छोड़ देते तुम भी
ऐसे ही
जैसे
मैंने छोड़ा

★ ★ ★

सम्पर्क :- प्रिंसीपल - एम॰ ए॰ एम॰ कालेज,
जम्मू

ज्ञानेश्वर
(सन् 1947 ई० - जम्मू)

बूंद बूंद बरसो

"पापा ! बादल क्यूं उठते हैं
गगन पर हैं क्यूं यह छा जाते ?"

"मुन्ने! जिनको बूंदें बनना
मिट्टी में जीवन है रचना
उमड़-घुमड़ ऊपर उठते हैं
बूंद बूंद होकर गिरते हैं
धरती पर हरियाली लाते
प्राणी प्राणी जीवन पाते
जिनको भी ऊपर उठना है
उनको तो बादल बनना है"

"वृक्ष जिसे मैंने रोपा था
अब यह मेरे कद से ऊंचा ।"

"हाँ ! हाँ ! बेटा
कितना सुंदर !
फैलायेगा अपनी बाहें
सिर पर लेगा तपता सूरज
ठंडी शीतल छाया देगा
जिसके नीचे मिल बैठोगे
गहन सोच कोई पाओगे
प्रीत लहरिया फैलाओगे
मंगल-धुन मन में गाओगे
धूल से उठकर जी उठेगा
जीवन नवअंकुर पायेगा
और इसी क्रम को चलना है
और यह क्रम चलता जायेगा ।"

★ ★ ★

सम्पर्क :- 41-बी, कर्णनगर, जम्मू -180 001

शारदा साहनी

(21 मार्च, 1947 - जम्मू)

यादें

मन के चौखटे पर,
कई जले/अधजले,
दीप जगमगा उठे हैं ।
सिर झनझना उठा है,
ध्यान की बत्ती इधर उधर -
हिलाती हूँ, डुलाती हूँ, मोड़ती हूँ, ।
लगता है - यादों की शतरंज का ,
तख़्ता खुल गया है ।
उस पर घोड़े, हाथी, वज़ीर सब आ गए हैं ।
एक याद को मारने के लिए,
घोड़ा, हाथी, वज़ीर, प्यादा सब खड़े हैं ।
यादें अब दाव पर लग गई हैं ।
वे सब नंगी हो ,
आवारा घूमने लगी हैं ।
सुख दुःख की एक एक गाँठ खुलती है ।
सुख के साथ सुखी होता है मन,
दुःख के साथ दुःखी होता है मन,
उन के साथ फिर रमता है तन,
गीता की पंक्ति तख़्त पर बिछ गई है ।
सुख के साथ सुखी,
दुःख के साथ दुःखी,
न होना ही जीवन है ।
पर यह कैसे संभव है ?
यादों की बारात कैसे रूक सकती है,
एक याद जो दुल्हन सम सज कर आ गई है,
वह कैसे रूक सकती है
वह उतरती है --
आगामी काल की शिलाओं पर,
सज संवर कर......

आशा का छोर थाम
धीरे धीरे सरक...
आहिस्ता आहिस्ता ...
एक दम दर्द होता है ,
टीस उठती है नख से शिर तक,
एक एक --- पार कर जाती है ...
पहुंचती है एवरेस्ट की चोटी पर ।
उसी समय यादों की भीड़
वहीं पहुंच जाती है ।
एक कंपन होती है हल्की सी,
लगता है ....
यह मन एक स्टेशन है
या बस स्टाप है ,
जो कभी रिक्त नहीं होता
निश्चिंत नहीं होता ।
यादों की भीड़ का शोरगुल
चीखें आवाजें आती है ....
गीता का उपदेश ...
कर्मण्येवाधिकरस्ते मा फलेषु कदाचन,
का घोड़ा तख़्ते पर दौड़ता है ...
वह पुरानी यादों के राजा को सह दे देता है ।
यादें कैंसर के रोगी की तरह
खंडित जर्जरित हो जाती है ।
मन का तख़्ता भी खाली होने को है,
उसी समय....
सुख दुःख समं कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ,
का ऊंट तख़्ते पर फैल जाता है ।
पर उस के लिए
न जाने कितना रास्ता तय करना है;
तभी वे यादों के जले अधजले दीप;
केवल जले हुए दीपों में बदल जाएंगे ।

* * *

सम्पर्क :- म० न० 14, गली न० 2, सूर्य विहार,
बोहड़ी चुंगी, तालाब तिल्लों, जम्मू-02

ओम गोस्वामी

(सन् 1947 ई॰ - जम्मू)

धुएं की इबारत

भीड़-भाड़ में
खोया चेहरा
ढूँढ रहा है
अपनी मंजिल
टीस रही
भीतर ही भीतर
पीड़ा झिलमिल
त्रास, वेदना
बिखरे पथ-पर
अंतस् का उजास
तिरोहित
मेले में जैसे
खोआ बालक
दिशाहीन
चल रहा है बचपन
वर्तमान को
भूल चुका है
झाड़ चुका जो
भूत का पल्लू
छूट चुका है
विरसा पीछे
डरा सहमा-सा
है वह गुमसुम
लक्ष्य
आँखों से हो रहा है
ओझल
अग्नि के अलाव
जल रहे
खुशियों की जगह

दर्द पल रहे
सीनों में धधक
रही ज्वाला
आँखों में
घुल रही निरतंर
घुएं की कड़वाहट
ढरक रहे आँसू पल -पल
टप-टप
टप-टप टप-टप
सांसें लावा
उफन रही हैं
दूर क्षितिज में
षड़यंत्र पल रहे
वायु, जल, आकाश
और धरती
परिदृश्य पर
कोहरे का पर्दा
धंधुयाती मिटती
दिख रही दिशाएं
प्रलय पीठिका
का त्रास विहगम
दूर कहीं बज रहा मृदंगम्
मात्र यही आभास
एक हो रहे -
धरती आकाश
चौपाल में बैठा
सरपंच है बूढ़ा
मिचमिचाकर आंखे
वह कहता
शायद
मनु
फिर से आएगा
वह नौका में
बीज नसलों के

भर लाएगा
प्रलय मिटा देगी
सब अंतर
शुरू करेगा वह
नव मन्वंतर
बूढ़ी जर्जर
इमारत के ऊपर
धड़ियाल घुन रहा
वक्त के रेज़े
गली-सड़ी रूई के रेशे
इतिहास का फिर से
कतेगा तागा
कोहलू के बैलों का
अनुक्रम
घूम रही दो सूइयां
हरदम
धुर्री और केंद्र
हो रहे इकमिक
घड़ी की
टिक -टिक
टिक-टिक, टिक-टिक

दौड़ रहा है
समय निरंतर
शक, विक्रमी
सन्-सवंत्
घिसट रहे हैं
मूल्य स्वदेशी
सिमट रहे हैं
टूट रहे सब
ताने-बाने
नाम नए हैं
खेल पुराने
ताक में रखे

चरखे पर
मकड़ी जाला बुन
रही निरंतर
नये ज़माने का
है निर्णय यह
अजायब घर अब
बनेंगे नित नये
नुमायश पर होंगे -
तकली, सूत , टोपी
और चरखा
ऐनक, लाठी, चप्पल
ओर चादर बापू की
सहेजेंगे
संग स्वदेशी के
होगा अद्भुत
एक समन्वय
पुनः उपनिवेश
की विष वेलि उगेगी
भूमंडलीकरण का
देकर इक नारा
खिलवाड़ करेंगी
बहुराष्ट्रीय कंपनियां
उन आदर्शों से
जिनसे लड़ा संग्राम
पाया स्वतंत्रता का वरदान
भारत छोड़ो कहने वालों
के वारिस
आज पात्र बने
उपहास के
न्यौत रहे
उपनिवेश विदेशी
विकट निरंतर
होती नारों की भाषा
उछल रहे

नील गगन में
नारों पे नारे -

पर्यटक विदेशी
भी आते हैं
संग वे अपने
डालर लाते हैं
साबरमती में
झुकता है माथा
सुनते हैं
वे दत्तचित गाथा
बातों से नहीं
परहेज है हमको
भाषण पर भाषण
दिलवाएंगे
जन्म दिवस और
जयंतियां हम
दिपावली समान
मनाएंगे
राष्ट्राध्यक्ष कोई
जब आएगा
राजधानी को
दुलहिन -सा सजाएंगे
झंडियां भी फहराएंगे
राजघाट पर
लगेगा मेला
पुष्पांजलि भी होगी
अर्पित
कथनी करनी
का जो अंतर
रामधुन में
दब जाएगा
खादी का
भडांरण करके

विचारों को चुन देंगे
ग्रंथों में

वेश भूषा
विचार विदेशी
तो भी
गांधी आदर्श हमारा
प्रतिपल
निषेध करें
देश का
अंतरात्मा पर
रख लेंगे पत्थर
आर्ष वचन
यही दुहारांएगे -
"बापू ने कहा था ऐसा"
हर चौराहे पर
प्रतिमा का
अनावरण होगा
समारोह भी रचवाएंगे
माल्यार्पण करेंगे
प्यारे नेता
बापू के जो
बने प्रवक्ता
सौम्यता का
फौलादी पर्दा
आवरण घनी कालिख
छुपा रहे
अभियोग दर्जनों
अदालत में लंबित
छिप जाते
हत्या, बलात्कार, डकैती
लंबे भाषण
गांधी की महिमा
पर प्रवचन

अहिंसावाद का मर्म
बखानें
खादी का जो
कुर्ता पहने

अंधियारे से
झांकेगी आशा
मिल रही आज कल
नित-नयी परिभाषा
सत्याग्रह
अब घेराव हो गया
अहिंसा मंत्र
झाड़-फूंक का
असहमति अब
हड़ताल हो गई
विरोध
पर्याय आतंक का
संपत्ति धू-धू
हो रही स्वाहा
भवनों को निगलें
ज्वाला की लपटें
फुकेंगे वाहन
खतरे की झंडी
भटक उठी
यह एक बार जो
आग फिर नहीं
होगी ठंडी
हा-हा कार की सरगम पर
गूंजे जो
स्वर पराजय के वे
राग बन गए
चीत्कार की
तान उठ रही
यही बनेगी

जन-जन का गान
वसुधा को
शत-शत करें प्रणाम

क्यों मार-काट
अब धर्म बन रहा
देश-बाँट का
काँड क्यों भूले
नौआखली क्या
होगी ताज़ा
विस्मृति के गहरे
गर्त गिरेंगे
मकड़ियों का
साम्राज्य बनेगा
हो जाएंगे हम
सारे गुम
हिजड़े नाच करेंगे -
ठुम ठुम, ठुम ठुम
नरक बन रहा
गौरव इसका
गुज़रा निस दिन
ता-ता थैइया
छिड़ी रागनी गुलछर्रो की
सबका बाप
बना रूपय्या
विंसगतियों के
बढ़ते घेरे में
धू-धू करती
जल रही हवेली
जैसे आत्म-दाह कर रही
किस्मत की मारी
नयी नवेली
राख हो रहे
खंभे इसके

दरक रहे गौरव के गढ़
लावा उगल रहे
बवंडर
ध्वस्त आस्थाओं
के शिखर
क्षितिज के
मटमैले कागज़ पर
नियति के हस्ताक्षर
धुंए की पेंसिल
से लिखा हो जैसे
बूढ़े सरपंच ने खत
ऐसी धुंधली
अस्पष्ट इबारत -
"हत्यारों से कभी
कम नहीं होते
बे-परवाह
और ग़ाफिल वारिस
मिटा देते हैं
पलक झपकते
जो सदियों की
अनमोल विरासत ।"
जैसे बामियान के बुत
हुए ध्वस्त
थे अद्भुत
सचमुच अद्भुत !

★ ★ ★

सम्पर्क :- 181-पहाड़ियाँ स्ट्रीट, जम्मू तवी-180001

श्याम लाल रैणा

(3 फरवरी, 1949 - जम्मू)

बाहर आओ

तुम अंदर सोए हुए हो
और मैं बाहर से
आ रहा हूँ,
तुम कहते हो अंधेरा है
सवेरा ला रहा हूँ ।
तुम्हें सोने की पड़ी है
मुझे जगाने का
शौक है,
न जागने पर पाबंदी है
और
न सोने पर रोक है,
अब जागो
बिस्तर त्यागो
कमरे की खिडकियाँ
दरवाजे खोलो
थोड़ा टहलो
थोड़ा भागो
सूरज की तरह
जो हर रोज
अपना सफर एक दुनिया
से शुरू करता है
और समय
पर दूसरी दुनियां
का कारोबार
चलाता है
उसके चले जाने
पुनः आने का
मात्र
भ्रम है
इसीलिए तुम
कमरा बंद
करके कहते
हो अंधेरा है,
वास्तविकता
को पहचानना है
तो मेरे साथ
बाहर आओ
यहां सवेरा है ।

सम्पर्क :- 196, पौनी चक, जम्मू - 2

चन्द्र प्रकाश सिंह
(15 जून, 1949 – साम्बा)

प्रश्न चिन्ह

कब, क्यों, कहाँ, कैसे
आदि शब्दों से जुड़ा हुआ,
पूछताछ, कुतुहल, जिज्ञासा
आदि का अभिप्राय लिए,
काँटे के समान चुभकर
बहुधा घोर चिंता का
कारण बन जाता है ।

एक ऐसा चिन्ह
जिसे लगाना
तो बहुत आसान होता है,
पर हटाना, काफी कठिन ।

* * *

सम्पर्क :- मण्डी खैरी, सांवा – 184121

विजय मल्ला मेहर

(15 जुलाई, 1950 - कश्मीर)

बस्ती

मुझे ऐसी बस्ती नहीं चाहिये
मुझे मौत सस्ती नहीं चाहिये
यहां झूठ नफरत दुराचार है
यहां प्यार भी एक व्यापार है
विकाऊ कला है कलाकार है
यह बस्ती अन्धेरे का वाज़ार है

रोशनी बिक गई
चांदनी बिक गई
यहां प्यार की हर कली बिक गई
ईश्वर बिक गया खुदा भी बिक गया
तुम्ही को मुबारिक रहे दोस्तो
मुझे ऐसी बस्ती नहीं चाहिये
मुझे मौत सस्ती नहीं चाहिये
यह बस्ती तो है एक नीलामघर
यहां क्या नहीं बेच देते हैं लोग
यह धरती बिक गई आसमां बिक गया
यहाँ बिक गया वह वहाँ बिक गया
तुम्ही को मुबारिक रहे दोस्तो
मुझे ऐसी बस्ती नहीं चहिये
मुझे मौत सस्ती नहीं चहिये

* * *

सम्पर्क :- 21, लक्ष्मी नगर, सरवाल, जम्मू

निर्मल विनोद

(सन् 1950 ई० - जम्मू)

धूप का झरे झरना

नयनों में फूल खिले हर सिंगार के
नाच उठे बिम्ब नदी के उभार के

सब कहीं शगूफ़ो का
मौसम आया, मानो
शुरू हो गयी यात्रा एक
भँवरे ने बो डाली
तितली के कान में
मधुर गीत की कोई टेक
तार हो उठे झंकृत मन -सितार के
नाच उठे बिम्ब नदी के उभार के

झर-झर, झर-झर, झर-झर
धूप का झरे झरना
झूम रहा नीला आकाश
लहर-लहर लहरायें
पेड़ों की फुनगियां
क्या पीपल और क्या पलाश
गुलमोहर पंख चूमते बयार के
नाच उठे बिम्ब नदी के उभार के

छलक-छलक पड़ती है
अदिम मन की हँसी
लगता उल्लास है जवान
लो लगे बजाने अब
तालियाँ सभी पत्ते
ऋतु के सौ लाख कद्रदान
कहकहे नहीं अब लगते उधार के
नाच उठे बिम्ब नदीं के उभार के ।

* * *

सम्पर्क :- सुशील निवास, हरिसिंह नगर, रिहाड़ी, जम्मू

आदर्श

(27 दिसंबर, 1950)

यादों में चेहरा

सदाबहार सा
वह टुकड़ा ज़िंदगी का
था हरदम अपनी लय में धड़कता
समूचे सुर-ताल सहित
प्रकृति अपने स्फुरण में
गाए जाती थी मल्हार
रोम-रोम सदा पुलकित
हँसी खोजती रहती
फूट पड़ने का बहाना ।

जीवन का सर्वाधिक
रस पगा काल खण्ड
गुज़र गया कब धीमे से सहलाकर
पगलाया सा
ख़बर तक न हुई
आ-आ कर जुड़ती गई तरंगे
बनती गई स्मृतियाँ
बहुत कुछ बनता रहा जमा होते -होते
और जितना-जितना बना
उतना ही रहा छूटता-टूटता
पीछे दूर और दूर
सूखी यमुना किनारे
चुप खड़े ताजमहल सा ।

निकल तो आना ही था आगे
देखते रह -रह

पलट पलट पीछे

हाँ वह था

उतने ही समृद्ध सौदंर्य से दपदपाता

ज्यों मेरी स्मृतियों में

चेहरा तुम्हारा ।

* * *

सम्पर्क :- 24, एम॰ आई॰ जी॰ हाऊसिंग
कॉलोनी, उधमपुर

विजय पुरी

(8 अप्रैल, 1952 - जम्मू)

दहशत

दहशत की गर्द
जम चली है मेरी आंखों में
धुंधला गया है माहौल
कुछ भी अब साफ नहीं दिखता ।
रिश्तों के बीच विश्वास
ताज़े घाव से रिसने वाले रक्त सा
बहता चला जा रहा है अनवरत ।
कब यह रक्तिम स्राव
पीप बन जाये
या फिर ग्रैन्ग्रीन, क्या पता ।
फिर मुझे देनी पड़े आज्ञा
अपने ही शरीर से
अपने अंग को तिरस्कार से
काट कर अलग फेंक देने की ।
दहशत है, कि मैं
निहत्था
बेखबर
बिना मुकाबला किये
कहीं मार न दिया जाऊं।
हालांकि मैं यह बखूबी जानता हूँ
कि मौत निश्चित है ।
मुझे जो मार सकते हैं
अनजाने लोग वो हैं
जिनके विश्वास मुझ से भिन्न हैं

मुझे खौफ है कि वो
मेरे साथ साथ मेरे विश्वासों का भी
कत्ल कर देंगे ।
मुझे दहशत है कि मैं सारी उम्र
बेशक अपनी तरह से जी न सका
मगर अपनी तरह से मरने का अधिकार
वो मुझे मार कर
मुझसे छीन लेंगे, निष्ठुर !

* * *

सम्पर्क :- 5/112, विकास नगर, जम्मू-180 007

निर्मल ऐमा
(1 मई, 1952 - कश्मीर)

कब तक

करके लोकतन्त्र को स्वीकार
रहता है इंतजार
अब सत्ता को, कौन सा दल
करके हरण
जमायेगा
अपने चरण

सत्तारूढ़
लेके सत्ता की शरण
क्या गुल खिलायेगा ?
बेईमानी और ईमानदारी की
घर्षणा
अपने को
बेगुनाही साबित करने के लिए
कैसे छटपटायेगी ?
खून के आँसू बहायेगी

भ्रष्टाचार किन झलकियों से
होकर प्रभावित
शोषण और शोषित की लीला से
करके मनोरंजन
निकालेगा
कौन सा फरमान
दाँव पर लगाकर
हमारा जीवन
अय्यारी से नचवाएँगें

सिक्कों की झंकार पर
कठपुतलियों की तरह
और हम
अपने ही
तमाशबीन होकर
अपने ही हाथों को
स्वयं पीट पीट कर
बजाएँगे ताली
कब-तक

* * *

सम्पर्क :- 2/122, सुभाष नगर, जम्मू

संतोष सांगड़ा

(14 मई, 1953 - जम्मू)

हालात

उस बस्ती के तीन चार
फुट ऊँचे झोपडों में
जरूरी वस्त्रों में लिपटे
कुछ शरीर
जिनके घर ईश्वर ने
मकानों की हैसियत से
नहीं बनाये
हाँ सर्दी, गर्मी
के अंतर को ना
समझने वाली एक
मोटी चमड़ी जरूर दे दी
दिन भर अपने आज़ाद
देश में काम करके
वहीं लौटते हैं, और
कुछ देर बाद वहां
कसैला सा धुआं निकलता है
शान्त करता है पेट की आग को
कुछ ज़रूरी सा आनाज पका कर
जिसकी कोई शक्ल नहीं
आकार नहीं निश्चित नहीं
और भूखे पेट झौपडों के भीतर, कीड़ों
मकोड़ों की तरह कुलबुलाते
शरीर
जिनमें हर साल और शरीर
आकर जुड़ जाते हैं ।

उसी तरह कुलबुलाने के लिए
उसी तरह का जीवन जीने के लिए
इसी तरह बस्ती का आकार
बदलता जाता है
नहीं बदलते हैं तो, केवल
झौंपड़ीयों के आकार
और भीतर रहते-2
शरीरों के हालात ।

* * *

सम्पर्क :- 25-ए, शास्त्रीनगर, जम्मू-180001

महाराज कृष्ण संतोषी

(सन् 1954 ई॰ - मट्टन, कश्मीर)

बहुत दिनों बाद

बहुत दिनों बाद
मैं गांव गया
खुर्ची नाखूनों से वहां
आंगन की मिट्टी ।

देखा
जो पहले नम हुआ करती थी
वही मिट्टी अब भीतर से
कहीं पर्त्तों तक
सूख गई है ।
बहुत देर रोया मैं
और मेरे आंसुओं से भीग गई
सारी मिट्टी !

मैं फेंक आया वह सारी मिट्टी वहीं
पर शहर लौट कर
अभी भी यह लगता है
मेरे हाथों से छूटी नहीं वह मिट्टी
जैसे उस में किसी फूल के खिलने की
चाह जगी है ।

उस समय मुझे यह लगता है
जैसे मेरे हाथ दुनिया के सब से खूबसूरत हाथ हैं
जो किसी फूल का खिलना
अपनी हथेली पर अनुभव कर रहें हैं ।

* * *

सम्पर्क :- 113 ए/4, आनन्द नगर,
बोहड़ी, जम्मू

बृज मोहन

(25 अगस्त, 1954 - जम्मू)

गीत

हवा की सर्द लहर चलती है
तो दूर दूर फैले देवदार
लहराने लगते हैं ।
सुरमई रात अपने साथ ठंडक
समेट लाती है ।
इसी हसीं वादियों में
धुंध ही धुंध फैल जाती है ।
हवा भी भीग भीग जाती है
पेड़ो के पत्ते ठिठुरे हाथों को,
गर्माने लगते हैं ।
चांद धुंधलाया हुआ
देखो कितना हसीन लगता है ।
ये हमीं जानते हैं
दिल को कितना सुकून मिलता है ।
चांदनी झूम झूम गाती है,
और आसमां पे तारे बेशुमार
मुसकाने लगते हैं ।
आज की रात अगर
चांद का कारवां ठहर जाए ।
दे नज़ारा, ये समां
काश दिल में मेरे उतर जाए ।
रात को नींद किसे आती है
जब ऐसे मस्त नज़ारे आँखों में
बस जाने लगते हैं ।
हवा की सर्द लहर चलती है
तो दूर दूर फैले देवदार
लहराने लगते हैं ।

* * *

सम्पर्क :- 238-दिवान एस्टेट, मुबारक मण्डी, जम्मू

तृप्त
(3 अक्तूबर, 1954 - जम्मू)

अनुभूति

जब तक तुम थी
तुम थी ।
अब तुम नहीं,
तो भी तुम बसी हो मेरी देह में ।
दुनिया का हो कोई छोर
तुम हो साथ
मेरी दिनचर्या, मेरे विचारों
दिल के हरेक कोने में ।
मैं हो गई तुम
जब से बनी मां हूं ।
कितना सुखद लगता है
अपनी बेटी को बढ़ता देखना ।
तुमने भी तो भोगा होगा
यही अनुभव
रात दिन हमें बढ़ता देख ।
भोगते जीवन यथार्थ
जीवन की ऊहापोह में
कई बार तुमने चाहा होगा
हम समझें तुम्हें,
हाथों में ले हाथ
दें सहारा तुम्हे ।
हमारी नासमझी के कारण
ऐसा न हो पाया होगा संभव...
हम नए निकले चूज़े की भांति
एक बलिश्त भर सोच लिए
देखने, भोगने, उड़ान भरने को आतुर
अपने दायरे में सिकुचे
न समझ पाए होंगे तुम्हें

ऐसा अब गुजरता है मेरे साथ
जब अपनी मनःस्थिति
अधखिली समझ में उलझी अपनी बेटी को समझाने में
रहती हूं असमर्थ ।
उम्र के उतार पर
महसूस किया है
कितनी अकेली, निपट अकेली थी
भीड़ से अलग
अपनी सोचों के सागर में तुम ।
याद आती हैं सब नादानियां
तुम्हारे मना करने पर भी
जी भर कर की थी हमने ।
बहुत बार, तुम हमें
अपना राज़दार बना
अतृप्त इच्छाओं को इंगित करती थी......
अपने बेशकीमती समय से
चंद पल चुरा
तुम्हारे लम्हों, सोचों में बंट सकती थी
अगर चाहती देना सहारा तुम्हें ।
अब जब किसी को ज़रूरत नहीं मेरी
कोने में पड़ी बेकार वस्तु
दिखने लगी उनको
जिनकी थी प्रेरणा कभी
हाथों में बेबसी के फफोले के
शेष नहीं कुछ,
हाथों से पकड़ने पर
अतीत से तुम्हारी यादों को
फफोला टीसता है

* * *

सम्पर्क :- 5/112, विकास नगर, जम्मू

अग्नि शेखर
(सन् 1955 ई॰ - सुंबल, कश्मीर)

तुम्हारी याद

तुम्हारी याद
जैसे सर्जरी के दौरान
भूल से रह गयी हो
दिमाग की नसों में
एक महीन सुई.....

तुम्हारी याद
जैसे नींद में
धीरे धीरे फैल गयी हो
कहीं से
चुल्हे की गैस......

तुम्हारी याद
जैसे कर्फ्यू लगी अंधेरी रात में
कोई आदमी नींद में
सड़क पर दौड़ रहा हो.....

तुम्हारी याद में
मेरी नसें फट रही हैं
जल जाऊंगा अभी मैं
शायद मैं कहीं मार दिया जाऊंगा
गोली से

* * *

सम्पर्क :- बी-90/12, भवानी नगर,
जानीपुर, जम्मू - 180007

प्रमोद कुमार

(सन् 1954 ई० - जम्मू)

गन्ध

स्वार्थ की भटठ्ी से
आती गन्ध
फैलती चहुँ ओर
टूटती
नाजुक रिश्तों की डोर ।
डोलता विश्वास
किसी अपने का एहसास
शून्य बन
तलाशता
प्यार से बँधी
सम्बन्धों की पगडंडी ।
अपने ही द्वारा
रचित
चक्रव्यूह में फंसता
कराहता
फिर भी हंसता
लम्बी ले सांस
गिनता उगंली के पोरों पर
कुछ
चलता है जाता
किए बिना
परवाह
गन्ध की ।

*   *   *

सम्पर्क :- गाँव मरालियां, मीरां साहिब
आर० एस० पुरा, जम्मू

नरेश कुमार 'उदास'

(12 सितम्बर, 1955 - जम्मू)

यातना शिविर

जब अपने खेतों में
जाने से बेटियाँ घबरायें
जहाँ साँझ ढले
लोग घरों के द्वार बंद कर लें ।
जब सन्नाटा
भयभीत करने लगे
और कुछ लोग
घरों में बैठे मना रहें हों खैर
अपने-अपने मित्रों
सगे-सम्बधियों की
जो लौटे नहीं
रात होने पर भी
अभी ।
तब सुरक्षा नामक शब्द
लगता है बेमानी
जब आदमी अपनी परछाई से भी
डरने लगे ।
तब जीने के अर्थ
बदल जाते हैं
वातावरण में अजीब गन्ध तैरती है
जब मानव का रक्त
सड़क पर जमकर रह जाए
और लोगों की भीड़
मात्र तमाशा बनी रहे ।
तब जीवन बन जाता है

यातना शिविर
प्रत्येक दिन चढ़ता है
खून से लबालब
और अन्धी -काली रातों में
घुटती हैं असंख्य
अवश चीखें ।

★ ★ ★

सम्पर्क :- हि० जै० स० प्रौ० संस्थान, पालमपुर-61

बलजीत सिंह रैना

(17 अगस्त, 1958 - जम्मू)

अपरिवर्तित

कभी न लौटने के लिए
बार बार जाती थी
और हर बार लौट आती थी
अजीब थी औरत !

और इस बार आदमी
सहज नहीं था
लौट आने पर
स्वागत् करते हुए !

आशाओं की रक्तसनी लाश
एक अनचाहे स्वप्न-सी
कुरेदने लगती थी
संबंधों की छत को
भेदने लगती थी
चुपचाप...... निरंतर !

फिर भी जाने क्यों
सहज होने लगा था आदमी
अविश्वास की आंधी के पश्चात्
तूफान गुज़र जाने पर
वस्तुओं के स्थिर होने -सा !

धुंध के छट जाने पर
शांत था अवश्य ही
किसी भ्रम में नहीं था
समझता था यह शांति
दरअसल शांति नहीं है
एक निस्तब्ध निषक्रियता

रिश्ते की चटकी छत से
टपकता आंसू साक्षी है
कि नहीं रह पाता
पहले-सा कुछ भी
प्रचण्ड चक्रवात के पश्चात्!

परिवर्तन के सिद्धांत की
उड़ाते हुए खिल्ली
औरत हैरान है
कितना बदल गया है आदमी !

तब कच्ची थी औरत
अनजान नहीं था आदमी
आशावान था सफर में
कि पक जाते हैं फल भी
मौसम के बदलते ही !

परन्तु एक अनंत मौन
जीते हुए आज वे
मोहभंग के शिखर पर बैठे
दोनों आज़ाद हैं
संबंधों के पुनर्निर्माण के लिये !

* * *

सम्पर्क :- पोस्ट बाक्स न॰ 121, जम्मू - 180001

सुजाता

(1 अप्रैल, 1959 ई० - जम्मू)

शीर्षक हीन (प्रेम) कवितायें

(1) चाहा था सब कुछ लौटा दें
फल-फूल, पत्तियां
धीरे-धीरे
लौटाती रही
ठूंठ उगाती रही
जब भी मौसम बोलते हैं
फूल -पत्तों की बातें करते हैं
फुनगियां चल देती हैं टहलने
शाख -शाख
किसी का सब कुछ लौटाते
उम्र जाती है बीत ।

(2) हरियाली मौसम से करे
प्रणय निवेदन
हरियाली ने उतार छोड़े
बन्धन सारे
तन-मन के
जमाये हवा-बिछौने
हरियाली ने रंग-गन्ध के पैरहन पहने
दिन का भूला मौसम
जब रात गये घर लौटे ।

(3) प्रेम नदी नहीं सागर होता है
गर होती नदी तैर ही गये होते,
प्रेम पगडंडी नहीं सड़क होता है
गर होती पगडंडी बिछ ही जाती इन्तजार में,
प्रेम टीला नहीं पूरा पहाड़ होता है
गर होता टीला नाप ही लेते उसकी ऊंचाई

प्रेम टहनी पर उगा फूल नहीं खिला मौसम होता है
गर होता फूल सहेज ही लेते किताबों में,
प्रेम तारा नहीं ब्रह्माण्ड होता है
गर होता सितारा किसी एक को रोशन करता
ये तो हज़ारों सितारों के साथ
सागर, पहाड़, मौसमों का हाथ पकड़
हज़ारों दिलों में जगमगाता है ।

(4) आटा मलती औरत अच्छे से सुलझा लेती है
प्यार का गणित
परिवार को रोटी से बांधती
पति-बच्चों को गरमागरम
फूली रोटियां परोसती
सख्त आटे को मुलायम बनाती
वह जानती है गणित एक विषय है
जवान होती बेटी के साथ
जवान होते उसके सुख - दुःख
बड़े होते बेटे की फैलती आंखों में
उलझता गणित का नफ़ा - जोड़
वह जमाने की हवा से वाकिफ़ है
अटक जाता गले में कोई कौर
भूल-भुला गणित - वणित
उड़न खटोले पर हो सवार
पहुंच जाती दूर - दराज
फिर लौट आती
रात होने वाली है
घर बिन उसके उदास है
आटे सनी परात धोनी है
दही के बर्तन में स्वाद जमाना है उसे
सवालों की कांट-छांट भी करनी है ।

* * *

सम्पर्क :- 68, लारेंस रोड़, अमृतसर

मनोहर व्यासपुरी

(2 जुलाई, 1960 - जम्मू)

कविता

हे पथिक

क्या रूककर बैठ गये हो

बहुत अधिक मंजिल भारी है इसलिये क्या ऐंठ गये हो

तुम चलो तो

दुनिया चलती है, धूप हवा औ सूर्य चंद्र भी चल रहे

और सांस तुम्हारी चलती है

जीवन एक कठिन डगर है

ऊंचे पर्वत, सागर गहरे

मरूस्थल है पत्थर पथ हैं

पर तुम को उस पार है जाना

जीवन जीना, जीने देना, प्रेम का दीप जलाना

तेरे निकट के साथी

सब कार्यों में जुटे हुये हैं

धूल सने चेहरे हैं तन वदन पसीने से

भीग चुके हैं

पर उत्साह है चेहरे पर, कुछ करने की

मन में लालसा, ये तो कर्मयोगी हैं

कर्म करेगें

भाग्य भरोसे नहीं रहेंगे

न पंडित को टेवा पत्री

दिखलायेंगे ।

न महूरत न शुभ लग्नों से

मन भरमायेंगे

ग्रह नक्षत्र और लग्न

इन्हें नहीं कुछ करते हैं

राहु केतु शनि भी
इनकी निष्ठा से डरते हैं
दशा दिशा इनके कदमों
की बान्दी है
बस उद्यम की ही चांदी है
हे पथिक,
तुम मत बैठो हार कर
तुम प्रेरणा के स्रोत हो
उठो और मंजिल छू लो
जहां रोशनियों के मीनार हैं,
इच्छाओं के मरूस्थल नहीं हैं,
प्यार है, प्रेम है, उत्साह है, हस्ती है
फिर भी चलते रहना नियति है

★ ★ ★

सम्पर्क :- हिन्दी अनुभाग, एन॰ एच॰ पी॰ सी॰
कार्यालय, जम्मू

शिवदेव मन्हास
(14 जुलाई, 1960 - घौ, जम्मू)

विश्वास

अक्सर मुझे लगता है
कि मेरे पास
तुम्हें कहने को बहुत कुछ है ।
तू मिले तो
उस मसौदे को तेरे आगे रख पाऊं
इसमें भी संशय है ।
भला मेरी बातों में
तुम्हें क्या रूचि हो सकती है ?
मेरी बातें तुम्हें 'बोर' न करें
यह सोच कर मैंने निश्चय किया है
कि तुझसे मिलने पर
मैं सिर्फ तुम्हें देखूंगा
सिर्फ तुम्हे सुनूंगा ।
मुझे विश्वास है कि
तेरे कहे शब्दों में
वह सब भी आ जाएगा
जो मैं तुम्हे कहना चाहता हूँ ।
वरना
तू मुझे मिलने ही क्यों आएगा ?

* * *

सम्पर्क :- डोगरी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

निर्मल विक्रम

(27 जुलाई, 1960 - जम्मू)

होली

वाक्य विन्यास में व्यस्त,
मेरी बेटी ने अचानक पूछा -
होली खेलना तो होता है माँ -
यह होली जलाना क्या हुआ ?
अनायास मेरे मुँह से निकला
अमन की सफेद चादर पर,
जब रक्त का रंग छिटक जाए,
भूख के पीले रंग से
नन्हे बच्चों की हंसी छिन जाए,
मां-बहन की इज्जत पे
जब काला रंग पुत जाए,
तो,
उस समय उमंग-तरंग से भरी होली,
खेली नहीं जाती,
मासूम अरमानों की होली जलाई जाती है,
मेरी बच्ची !!

* * *

सम्पर्क :- 840-ए, कृष्णा नगर, जम्मू

रचना शर्मा

(20 नवंबर, 1961 - उधमपुर, जम्मू)

बादलों का प्यार

देखी है कभी तुमने
क्या बादलों की भली भली सी
मुस्कराहट
या फिर अन्धेरी रात में
एकटक निहारते तारों की
झिलमिलाहट !
पर्वतों की सफेद चोटियों से
कैसे
लिपट-लिपट जाते हैं बादल -
क्या इसी को कहते हैं प्यार करना ?
चोटी पर घिरे बादलों का
लहरा कर बरस पड़ना
मन को ऐसा क्यों लगता है
कि वह चाहते हैं
रूठे हुए प्यार से
मनुहार में भर कर
झगड़ना !
बरसते हुए घने काले बादलों के
सीने से लगे
पर्वत को देख कर
बोलते हैं अपने अपने घरों में
दुबके हुए तारे--
बरसते रहना---यूं ही
मगर
प्यार कभी कम न करना

* * *

सम्पर्क :- द्वारा - मे॰ आर॰ के॰ शर्मा गढ़ी, उधमपुर

खजूर सिंह
(4 फरवरी, 1962 - कठुआ)

पथ का पत्थर

मैं पथ का पत्थर
गूंगा बहरा अंधा
मैं सजीव नहीं
और तू
अंह के वश
होकर गूंगा बहरा, अंधा
कुचल देता कितने ही
निर्बल जीवों को
जो जीवन भर
सहते पीड़ा
हे मानव !
तुम मानव हो ?
या
निर्जीव पत्थर
मेरी ही जाति के
पर मैं
तुम से उत्तम

*   *   *

सम्पर्क :- नगरोटा प्रेहता, बसोहली,
कठुआ - 184201

सुषमा 'सरल'

(13 जून, 1962 - जम्मू)

आराधना

तू सृष्टा मैं तेरी रचना ।
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना
प्रातःकाल का विहग जागृत
सात सुरों का घोले अमृत,
मेरी पर्ण कुटी पर प्रसृत
नव दिवस को करता विस्तृत ।
तू कर्ता मैं तेरी साधना
प्रति पल करूं मैं तेरी आराधना ।।

भोर का सुरभित गन्ध बयार
नव प्राणों का करे संचार,
देह को छूती चंचल फुहार
तन-मन पर जाती-जाती बलिहार।
तू दाता करूं तुझसे याचना
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना ।।

स्वर्णिम कर ले सूर्य उग आता
मेरे मन मन्दिर फैलाता,
मन्द-मन्द प्रभात मुस्काता
हर आंगन में रूक-रूक जाता ।
तू आलोक मैं तेरी भासना
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना ।।

उच्चशिखरों से भरता पल-पल
नदियों में करता फिर कल-कल,
लहरों में होती है झिल-मिल
हरता है जन मानस का मल ।
तू ह्रदय मैं तेरी वेदना
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना ।।

घाट सरकती केवट नैय्या ।
पंकज पुष्पित ताल तलैय्या,
पूजन अर्चन करती मईया
जीवन के सुख भरती गईया ।
तू ईश करूं तेरी बन्दना ।
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना ।।

रात्रि का सोता जीवन जागा
धुआं चिमनी से सरपट भागा,
अन्न बलि का खाते कागा
संवरे हैं मानुस के भागा ।
तू कामद मैं तेरी कामना
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना ।।

तू सृष्टा मैं तेरी रचना ।
प्रतिपल करूं मैं तेरी आराधना ।।

* * *

सम्पर्क :- वरिष्ठ व्याख्याता, संस्कृत विभाग,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू-180006

अरूणा शर्मा

(6 अक्तूबर, 1963 - जम्मू)

शाश्वत् सत्य

प्रतीक्षा नहीं, उम्मीद नहीं
उमंग नहीं, नहीं थी खुशी कोई
स्मरण करता हूँ तो
याद आता है धुँधला सा कुछ
बादल नहीं, घटा नहीं
हवा नहीं, नहीं थे जलकण कहीं ।
चलता जाता हूँ तो
रास्ते और भी आ जाते हैं सामने
राही नहीं, साथी नहीं
छाया नहीं, नहीं था विश्राम-स्थल कहीं ।
जीवन सफर है ऐसा
रेत का सहरा हो जैसा
मंजिल के निशान नहीं
मील का पत्थर नहीं
जब तक साँस है चलते जाना है,
फिर थक कर, टूट कर गिर जाना है ।
यहीं आदि है, यहीं अन्त है
यही अनादि, शाश्वत् सत्य है ।

* * *

सम्पर्क :- 54-ए/बी, गांधी नगर, जम्मू

निदा नवाज

(2 फरवरी, 1963 - कश्मीर)

क्या तुम्हें भी कभी

क्या तुम्हें भी कभी
अपने भीतर
पत्तों के झरने की
आवाजें सुनाई देती हैं ?

क्या तुमने भी कभी
कबूतर की लाल होती
आंखो के सागर में
खुशी-खुशी अपनी नाव को
डूबो दिया है ?

क्या तुम्हें भी कभी
अपने रेवड़ से बिछड़ने वाले
मेमने की अंतिम चीख
सुनाई देती है ?

क्या तुमने भी कभी
राख हुए जीवन में बसी
अंतिम चिन्गारी का संघर्ष
झेला है ?

क्या तुमने भी कभी
रेत होती हुई आंखों के पन्नों पर
उभरने वाली अन्तिम इबारत को
पढ़ा है ?

क्या तुम्हारे हाथों से भी
अधिकतर

फिसल जाती हैं मछलियां
और तुम देखते रहते हो
पानी पर लहरों से लिखे
प्रश्न को ?

क्या तुमने भी कभी
मरूस्थल की लपेट में आने वाले
पेड़ की
अन्तिम हरियाली की
वसीयत देखी है ?

और क्या तुम्हें भी कभी
अपने विचारों के धरातल पर
अनिवार्य लगती है एक क्रांति
पथरीले खेत की मुंडेर पर खड़े
उस कंकाल आदमी के लिए
जो अभी तक चूस रहा है
दुःखों की दरांती से कटा
अपना अंगूठा ?

यदि तुम्हारे पास
ऐसा कोई अनुभव नहीं
तो समझना
कि जीवन से तुम्हारा रिश्ता
टूट चुका है
और तुम कब्रिस्तान के वह पेड़
बन चुके हो
जिसकी छाँव में
मुर्दे दफ़नाए जाते हैं ।

* * *

सम्पर्क :- कोयल पुलवामा, कश्मीर-192 301

बोरडे गंजू रमण
(7 सितंबर, 1964 - कश्मीर)

पथ हूँ मैं

मैं सभ्यताओं की धरोहर
मानव-विकास को चिह्नित करता
चिरकाल पुरानी कर्मों की गाथा को
वर्तमान क्षणों में सुरबद्ध करने वाला ।
शब्द पुराने अध्याय नया हूँ
गिनत श्वासों की कड़ी में जीने के जँजाल
से निकाल
जीवन के उच्चतम अर्थो तक पहुँचाने वाला
पथ हूँ मैं ।
हे मुझको नकारने वाले !
तुम भ्रमित - पाँव चलाने को यात्रा मानने वाले
तुम विचलित - विवेक को खोने वाले
तुम उद्दण्ड- विषाक्त स्वरों में स्वंय को सिद्ध कहने वाले
मुझको ठोकर मारकर तुम मत यह समझो
कुण्ठित होगा अस्तित्व मेरा ।
ठहरो और ध्यान से देखो अपने पाँव
हर ठोकर पर न्यून हुई है इनमें
यात्रा - क्षमता ।

* * *

सम्पर्क :- गंजू हाऊस, हजूरी बाग,
तालाब तिल्लो, जम्मू

सुनील शर्मा
(31 जनवरी, 1965 - जम्मू)

उत्तरदायी कौन

धन हो या विषय सुख
छीनना जीवन शैली का
एक मात्र सरल साधन बन गया है
सरल धन की चाहत ने
अविश्वसनीय गिरावट
प्रदान की है साधनों को
मूल्यों का पतन
इन्द्रियों द्वारा ग्रहन करने से
कहीं अधिक तीव्रता से हो रहा है
और कामुकता स्थिर है ।
और ये गिरावट
उत्तेजित कर रही है,
कामुक विचार और दोष !
दुर्लभ हो गई है
सत्यता, निष्कपटता ।
विषय सुख की और अग्रसर है ये समाज
मूल्य अर्थहीन है
और विषय सुख बन गया है जीवन का जीवन गीत
तो फिर उत्तरदायी कौन ?
हमारे मापदण्ड ?
हमारी सीमाएं ?
हमारे मूल्य ?
या फिर स्वपनिल सतह को छूने को आतुर हम
या हमारा आडम्बर !

* * *

सम्पर्क :- 201/3, छन्नी हिम्मत, जम्मू-180015

सागर

(10 जुलाई, 1965 - जम्मू)

कल्पना

प्रिये,

मेरी कल्पना हो तुम

शायद, इसलिए हर समय,

तुम्हे कागज़ पर उतारने की कोशिश करता हूं

पर

तुम पलक झपकते ही आंखों से

ओझल क्यों हो जाती हो ?

मुझे अब तक मालूम नहीं,

सोचता हूं

आसमान से चांद को धरती पर ऊतार लाऊं

पर

जब भी तुम ख़्वाबों में आती हो

चांदनी भी फीकी पड़ जाती है।

तुम्हारा फूलों सा मुसकुराना

एक अफसाना न बन जाए

इसलिए

तुम कल्पना ही बन कर

मेरे ख़्वाबों की तामीर करना !!!

* * *

सतीश विमल
(सन् 1966 ई० - कश्मीर)

मलंग

मलंग की कुटिया में
पहचान के सारे दीये
बुझा दिए गए
तभी हमारी ज़ात अंधी हो गई
हम निराश होकर लौट आए

मलंग की कुटिया में
बाहर से जितना अंधेरा प्रविष्ट हुआ
उतने ही दीये प्रकाशित हुए
इसलिए मलंग कुटिया से भीतर आया

हम सब अपनी -अपनी
अंधी ज़ात लेकर
मलंगों की तरह भटक रहे हैं ।

* * *

पतझड़ में चिनार

बूढ़े चिनार के नीचे
तुमने अपने स्पर्श से
मेरी देह की चिलम सुलगा दी
चिनार ने बाहों में
अंगारे भरे !!

* * *

सम्पर्क :- सी-3, रेडियो कॉलोनी, राजबाग,
श्रीनगर - 190008

पवन खजूरिया

(7 फरवरी, 1968 - जम्मू)

छोटी - छोटी आँखें
छोटे - छोटे हाथ
कौन है अपना
किससे करें बात

छोटी - छोटी आँखे
छोटे - छोटे हाथ
कौन --
किससे करें बात

चील कौए गिद्द
नज़र गढ़ाए
बैठे हैं,
नोच लेंगे
सांसो की सत्ता
कुछ न बचेगा पास
छोटी छोटी आँखे
छोटे छोटे हाथ
कौन है अपना
किससे करें बात

खिसकता
रेत के माफ़िक
छन-छन
यह उमड़ता
घुमड़ता आकाश

ठिठक कर
सरक कर
निकलना चाहता
हूं, आगे
पर कुछ
कुकुरमुत्ते
ढकेलना
चाहते पीछे
मन में उठता
संत्रास
छोटी -छोटी आँखे
छोट-छोटे हाथ
कौन है अपना
किससे करें बात

★ ★ ★

सम्पर्क :- 2/187, भगवती नगर, जम्मू

ऋचा

(15 अप्रैल, 1968 - जम्मू)

प्रतीक्षा

तपती ज़मीन को इंतजार था कब से
बारिश की स्नेहिल बूंदों का
और
मेरे मन को भी
जो तरस गया कब से
कच्ची मिट्टी की सोंधी महक के लिए
वह महक,
जो संजोए लाती है संग
अनगिनत यादें बचपन की
मंदिर के पीछे पेड़ों के झूले
छोटी छोटी गुड़ियाँ और गुड़ियों के दूल्हे
पानी भरी गलियों में छपकते हुए चलना
फिर कॉलेज के कारीडोर में खड़े हो
वह सोंधी महक सांसों में भरना
कल
गई फिर मैं अपने पुराने घर
और खिड़की खोली देखने को
बारिश की बूंदों का संगीतमय नृत्य उल्लास
प्रतीक्षा में था मन
उसी सोंधी महक का लेने अहसास
पर
यह क्या ?
कैसी महक है यह ?
यह तो मिट्टी में घुल मिल गई
रक्त की महक है ।

मेरी वह सोंधी महक तो
कहीं खो गई है अपनों के ही रक्त की बारिश में
और
हर पल के आतंक ने लील लिया है
वह कोमल अहसास
यह बारिश तपती ज़मीन को तो दे गई
राहत शायद
पर अतृप्त सा शुष्क सा मन मेरा रहा
तरसता इंतज़ार में
कि
कब लाएगी यह बयार
वही सोंधी मिट्टी की अनछुई महक

* * *

सम्पर्क :- 15/2, त्रिकुटा नगर, जम्मू

शेख मुहम्मद कल्याण

(13 अक्तूबर, 1968 - जम्मू)

बचपन की स्मृति

आकाश मुटठी में
भर लेने की चाह ने
लौटा दिया मेरे बचपन में मुझे ।

यादों की नदी उफनने लगी
हिलोरे लेने लगा
मेरा दस साल का वजूद

जुम्मन मियां के बाग के अमरूद
रामू चाचा के कचालू
गंगू राम की मुंगफली
आज भी नहीं भूल पाता हूं
बार-बार बचपन में जाना चाहता हूं ।

स्कूल की वर्दी
गन्दी होने पर
मां की पिटाई और बाप का दुलार
मास्टर की छड़ी
और
फुटबाल का मैदान ताजा है
आज भी स्मृतियों में मेरी
चाहता हूं
लौट-लौट जाऊं
बचपन के दिनों में तलाश करूँ फिर वही
फुटबाल का मैदान
जुम्मन मियां के बाग के अमरूद
रामू चाचा के कचालू

और
गंगू राम की मुंगफली
कदाचित
अपने बेटे में ही करूँ तलाश
बचपन को अपने
पर नहीं
उसे तो फुर्सत ही नहीं है
किताबों से छुटकारा पाने की ।

* * *

सम्पर्क :- 505/2, नरवाल पाईं, सतवारी - 03

कुलविन्दर मीत

(31 मार्च, 1976 - जम्मू)

मेरा जम्मू

तवी की उछलती लहरों में
खो गया है
मेरा अस्तित्व !
सपनें हैं -
कि टूट जाते हैं
मुट्ठियाँ भींचने की आदत
अभी नहीं छूटी
शहर की गलियों में
उग आती है
पागल भीड़ !
बीच चौराहे
चित गिरी
संवेदना
मूल्यों का है शोषण
लुप्त होती
संस्कृति
दम तोड़ता
साहित्य
आधुनिकता के नाम पर
केवल व्यस्त सड़कें,
अंधेरी रातें
मिथ्या वादे
और बातें
झर-झर गोलियाँ
और कराहतें
स्वायतत्ता के उलझाव में
ठगा-ठगा जम्मू
जिसके पक्ष से
हमें ही निकालनी होगी
दूधिया फुहारें
और हमें ही
गर्भित करना होगा एक
क्रांतिवीर ।।

* * *

सम्पर्क :- 333, अजीत नगर, गाडीगढ़, जम्मू

अनशुल ऐमा

(29 जून, 1982 - कश्मीर)

फिर चली

एक कदम चलकर फिर रूकी,
　　　　फिर रूकी,
रूक रूक कर, फिर चली ।
　　　　हर बार नया जुड़ता गया
हर बार पुराना बिछुड़ता गया,
　　　　बहुत कुछ पाया,
बहुत कुछ हारा,
　　　　हार कर फिर से जीतने के लिए
हार कर, फिर चली ।
　　　　कुछ अच्छा मिलता रहा,
कुछ बुरा चिपकता रहा,
　　　　अन्धकार को प्रकाश बनाने के लिए,
तिमिर में से निकल, फिर चली ।
　　　　कभी पत्थर पर लकीर बनी,
कभी रेत पर पड़कर, उड़ा दी गई,
　　　　कभी पहचानी गई,
कभी अजनबी बन गई ।
　　　　अकेलेपन से फिर चली
चलती रही, चलती रही ।
　　　　जिन्दगी भर
यह ही करती रही,
　　　　आखिरी सांस तक चलती रहूंगी,
जिन्दगी है चलना,
　　　　चलती रहूँगी,
कभी कांपूंगी, कभी गाऊंगी,

पर पंछी की तरह
आकाश में उडती रहूँगी ।
तुफान की तरह कुछ पल की
मेहमान नहीं मैं,
सूर्य की तरह नम में चमकती रहूँगी,
चन्द्र की तरह प्रकाश फैलाती रहूँगी,
मैं जिन्दगी भर चलती रहूँगी ।

★ ★ ★

सम्पर्क :- 21, आनन्द विहार, बोहड़ी,
तालाब तिल्लो, जम्मू